सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : बी.ए. भाग–2 *सैमेस्टर–3*

(हिन्दी साहित्य) *एकांश संख्या : 1*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 रीतिकाल

1.2 हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास

1.3 हिन्दी भाषा के विविध रूप–राज भाषा, राष्ट्र भाषा, शब्द भण्डार

1.4 मानकीकरण

Department website : www.pbidde.org

B.A. - II

2020–21 तथा 2021–22 सैशन के लिए

Semester-III

हिंदी साहित्य

कुल अंक : 100 पास प्रतिशत : 35

आंतरिक मूल्यांकन : 25 अंक आंतरिक मूल्यांकन में पास होने के कुल अंक :9

लिखित परीक्षा : 75 अंक लिखित परीक्षा में पास होने के लिए कुल अंक : 26

समय : 3 घण्टे

नोटः सप्ताह में छह पीरियड में से दो पीरियड कम्पोजिशन को दिए जायेंगे, कम्पोजीशन ग्रुप में विद्यार्थियों की संख्या 15–20 तक रहेगी। शेष चार पीरियड टैक्सट को दिए जायेंगे।

पाठ्यक्रम

खण्ड–क

इस खण्ड के निम्नानुसार दो भाग होंगेः

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – केवल रीतिकाल (नामकरण, परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ) प्रमुख कवि– रसखान, घनानन्द, बिहारी, भूषण, गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य की विशेषताएँ।
2. हिंदी भाषा : उद्‌भव और विकास, हिंदी भाषा के विभिन्न रूप–राजभाषा, सम्पर्क भाषा, शब्द भण्डार और मानकीकरण।

खण्ड–ख

1. रीति सौरभ (संपादक) डॉ. रामसजन पाण्डेय, पंजाबी विश्वविद्यालय प्रकाशन (केवल–रसखान, सेनापति, बिहारी, घनानन्द, गुरु गोबिन्द सिंह)
2. प्रतिनिधि कहानियां : जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
   केवल पाँच कहानियाँ– (ग्राम, आकाशदीप, आंधी, मधुवा, पुरस्कार)

खण्ड–ग

उपर्युक्त समूचे पाठ्यक्रम में से संक्षिप्त उत्तरों वाले 15 प्रश्न पूछे जाएंगें।

विद्यार्थियों और परीक्षकों के लिए आवश्यक निर्देश

1. पाठ्यक्रम के सभी खण्डों में से प्रश्न पूछे जाएंगे।
2. प्रश्न पत्र को तीन खण्डों क, ख, ग में विभक्त किया जाएगा।
3. **खण्ड–क**

i) हिन्दी साहित्य का रीतिकाल – **(दो में से एक प्रश्न) अंक–09**

ii) हिन्दी भाषा, निर्धारित पाठ्यक्रम – **(दो में से एक प्रश्न) अंक–08**

4. **खण्ड–ख**

i) रीति सौरभ :– आलोचनात्मक प्रश्न (कवि / लेखक–परिचय / रचना का सार / रचना समीक्षा, उद्देश्य, चरित्र–चित्रण आदि) – **(दो में से एक प्रश्न) अंक–09**
सप्रसंग व्याख्याएं – **(दो में से एक व्याख्या) अंक–05**

ii) प्रतिनिधि कहानियां :– आलोचनात्मक प्रश्न (कवि / लेखक–परिचय / रचना का सार / रचना समीक्षा, उद्देश्य, चरित्र–चित्रण आदि) – **(दो में से एक प्रश्न) अंक–09**
सप्रसंग व्याख्याएं – **(दो में से एक व्याख्या) अंक–05**

5. **खण्ड–ग :** इस खण्ड के अन्तर्गत समूचे पाठ्यक्रम से सम्बंधित 15 संक्षिप्त उत्तरों वाले प्रश्न बिना विकल्प के पूछे जाएंगें। सभी का उत्तर देना अनिवार्य होगा।

15×2=30

आंतरिक मूल्यांकन के कुल 25 अंकों का विभाजन निम्न प्रकार से है :–

कुल अंक : **25**
Attendance- 05
Assignment/ Project - 10
Two Mid Sem. Exam* - 10

*** Average of both Mid-sem/Internal Exams**

Updated on June, 2023

पाठ संख्या – 1.1 लेखिका–डॉ. गायत्राी मिश्रा

रीतिकाल

रुपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 रीतिकाल : नामकरण
1.1.3 परिस्थितियाँ
1.1.3.1 राजनीतिक परिस्थिति
1.1.3.2 सामाजिक परिस्थिति
1.1.3.3 धार्मिक परिस्थिति
1.1.3.4 साहित्यिक परिस्थिति
1.1.4 प्रवृत्तियाँ
1.1.5 शिल्प पक्ष
1.1.5.1 स्वयं जांच अभ्यास
1.1.6 सारांश
1.1.7 प्रश्नावली
1.1.8 सहायक पुस्तकें

1.1.0 उद्देश्य :

रीतिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का महत्वपूर्ण काल है। 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक का समय हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस पाठ में रीतिकाल के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जाएगा। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप :

* रीतिकाल का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे।
* इसके नामकरण का विवेचन कर सकेंगे।
* इस काल की परिस्थितियों को समझ सकेंगे।
* विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव को जान सकेंगे और
* इस काल के साहित्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।

1.1.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल से पूर्व भक्तिकाल और आदिकाल आते हैं जिस प्रकार आदिकाल का प्रभाव भक्तिकाल पर रहा उसी प्रकार भक्तिकाल के सन्तों–कवियों का प्रभाव रीतिकाल पर भी रहा जो उनके साहित्य पर लक्षित होता है। रीतिकाल का एक बहुत बड़ा कवि वर्ग इनसे प्रभावित होकर इनका अनुसरण करते हुए काव्य रचना की ओर प्रवृत रहा। रीतिकाल में एक ही दर्रे पर कविता लिखी गई। इसमें पहले काव्य के लक्षण देना फिर स्वनिर्मित उदाहरण देना, इसी पद्धति पर अधिकांश कवियों ने रचनाएँ की। इस समय मुख्य विषय श्रृंगार ही था। इस समय की कविता पर तत्कालीन सामन्तों की विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है, क्योंकि कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए उनकी रुचि के अनुसार काव्य रचता था। अतः इस समय कविता विषय और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से ह्रासोन्मुख रही। इस पाठ में हम इसके विभिन्न कारण और प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का विवेचन करेंगे।

1.1.2 रीतिकाल : नामकरण

रीतिकाल के नामकरण से पूर्व 'रीति' शब्द का अर्थ स्पष्ट होना ज़रूरी है। 'रीति' शब्द की व्युत्पत्ति 'रीड' धातु से है जिसका अर्थ है गति, चाल मार्ग या प्रणाली। किन्तु रीतिकाल से यह शब्द जुड़कर एक विशेष प्रकार के साँचे या ''पैटर्न'' के आधार पर रचे गये काव्य की ओर इंगित करता है। वामन ने जिस 'रीति' सम्प्रदाय का विवेचन किया था, यह शब्द उससे पृथक् है। वामन ने काव्य गुण पर आधारित 'पद रचना' को 'रीति' कहा जो उनके पश्चात् एक शैली का पर्याय बनकर रह गई। हिन्दी में रीतिकाल का 'रीति' शब्द व्यापक अर्थ का परिचायक है। यह रस, अलंकार, शब्द शक्ति, छन्द आदि काव्यांगों को आधार मानकर लिखी गई हैं वे एक खास ''पैटर्न'' में बंधी होने के कारण रीतिकाव्य के अन्तर्गत आई।

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल के नामकरण पर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इस काल को अनेक नाम दिये गये। सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक ग्रंथ में इस युग को अलंकारों की प्रधानता के कारण 'अलंकृत काल' नाम दिया, किन्तु अन्य विद्वानों ने इस नाम को अपूर्ण मानते हुए इसमें अनेक दोष बताए। इन विद्वानों का मत था कि 'अलंकार काल' कहने से इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति का बोध नहीं होता। फिर अलंकारों से यह भी स्पष्ट नहीं होता कि अलंकारों से पूर्ण कविता या अलंकरण पर बल देने वाली कविता को अलंकृत काल कहा जाए। यदि अलंकृत काल नाम रखा जाए तो रस, छन्द आदि काव्य के अन्य अंगों पर रची रचना को किस काल में रखा जाए? अतः 'अलंकृतकाल' इस युग का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार की प्रधानता के कारण 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा दी जो एकांगिता के दोष से मुक्त नहीं है। क्योंकि इस समय श्रृंगार प्रधान ही नहीं बल्कि भूषण ग्वाल जोधराज गुरू गोबिन्द सिंह आदि की वीर रस, वृंद, गिरधर, बेताल, घाघ आदि के नीतिपरक दोहे भी रचे गये। इन्हें किस काल में समाहित किया जाएगा? अतः यह नाम भी अपूर्ण है।

डा. रमाशंकर शुक्ल ने इस काल को कलापक्ष की प्रधानता के कारण 'कलाकाल' की संज्ञा दी। इस नाम में भी अपूर्णता का बोध होता है। केवल कला पक्ष की प्रधानता को देखकर इसे 'कलाकाल' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि साहित्य में कला और भाव दोनों पक्ष अभिन्न रूप में जुड़े होते हैं। इस काल के कवियों में भावों की उपेक्षा है ऐसा कहना उन कवियों के प्रति अन्याय ही होगा।

पं. रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल में रीति ग्रन्थों की प्रचुरता के कारण इसे रीतिकाल कहा। यह नाम इन ठोस धरातल पर रखा गया है–

1. इस काल के प्रत्येक कवि ने रीति पद्धति में ही अपनी रचनाएं की हैं।
2. रीतिकाल कहने से इसकी सीमा का विस्तार हो जाता है जिसमें रीतिमुक्त और रीतिबद्ध कवियों के अतिरिक्त वीर रस, नीति, भक्ति और सभी फुटकल काव्य और कवियों को समाहित किया जा सकेगा।
3. इस नाम से कविता का भाव पक्ष और कला पक्ष का सम्बन्ध बना रहता है और किसी महत्वपूर्ण वस्तुगत विशेषता की उपेक्षा भी नहीं होती।

अतः रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया नाम 'रीतिकाल' सम्पूर्ण और सार्थक है।

1.1.3 परिस्थितियाँ :

साहित्य अपने युग की उपज होता है। इसीलिये उस पर समाज का सामाजिक परिस्थितियों एवं गतिविधियों का प्रभाव पड़ता है। साहित्य की प्रवृत्तियों को ठीक से समझने के लिए समसामयिक परिवेश अर्थात् तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हैं। रीतिकालीन साहित्य की रचना अकबर के बाद के मुगल सम्राट् और उनके विलासी सामन्तों के मनोरंजन के लिए उनकी विलासी मनोवृत्ति को ध्यान में रख कर की गई। अब हम इन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार करेंगे।

1.1.3.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

इस काल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के शासन काल में गोलकुण्डा, अहमदनगर, बीजापुर उनके साम्राज्य में शामिल हो चुके थे और अब मुगलों के पास 22 सूबे थे। जिनकी खूब आमदनी थी। कला, संगीत, धन धन्य से साम्राज्य परिपूर्ण था तथा मयूर सिंहासन तथा ताजमहल का निर्माण हो चुका था। जब शाहजहाँ बीमार पड़ा, तो उनके बेटों में सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गए। औरंगजेब ने दारा शिकोह की हत्या करके गद्दी हथिया ली। औरंगजेब के समय में ही आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूबों में विद्रोह हुए। महाराष्ट्र में शिवाजी ने और पंजाब में सिक्खों ने भी बगावत शुरू कर दी थी इधर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुगल साम्राज्य का पूर्णतया पतन हो गया। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में कोई भी योग्य न था। उनका अधिकतर समय नाच, रंग, सुरा और सुन्दरी में ही व्यतीत होता था। इधर अंग्रेज़ भी व्यापार के बहाने भारत में प्रवेश कर चुके थे। राज व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। सारी राजनीति राजमहलों के षड्यन्त्राों तक सीमित रह गई तथा साम्राज्य की बागडोर तबलची और महारानी बनी वैश्याओं के दलालों के ईशारों पर नृत्य करने लगी। इस तरह राजनीतिक दृष्टि से देश पदाक्रान्त, जर्जर और विकृत सामन्तवाद की इच्छाओं का पतन प्रतीक बन गया।

1.1.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :

इस समय सामाजिक स्थिति बहुत खराब थी। समाज दो वर्ग में विभक्त था–उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग। उपभोक्ता वर्ग में राजा से लेकर उनके दरबान, दास तक शामिल थे तो उत्पादक वर्ग में कृषक और श्रमजीवी थे। उपभोक्ता वर्ग उत्पादक वर्ग के श्रम पर ऐश्वर्य–भोग का जीवन व्यतीत कर रहा था। इनके अतिरिक्त विद्वानों का एक और वर्ग था जो अपनी जीविका के लिए उच्च वर्ग से जुड़े हुए थे।

उनमें उच्च वर्ग की आकांक्षाएं और संस्कार थे पर उनका सम्बन्ध निम्न और मध्य वर्ग से था।

इस काल की कविता का सम्बन्ध बादशाहों, राजाओं और सामन्तों की काम–क्षुधा की पूर्ति से था। शाहजहाँ के काल में उनके अमीरों और कर्मचारियों का जीवन भी ऐश्वर्यपूर्ण था। प्रान्तीय सामन्त भी उनकी नकल करते हुए रस रंग में डूबे रहते थे। उनकी विलासिता की सबसे बड़ी विशेषता थी– खोखलापन। वैभव प्रदर्शन की भावना ने विलासिता को जन्म दिया। विलासिता के रंग में रंगे ये धनी वर्ग शरीर भोग को ही सब कुछ मानते थे। मदिरा और नारी–भोग में पूरा राज्य, साम्राज्य डूबा रहता था।

उत्पादक वर्ग की हालत दयनीय थी। उन पर ''जजिया कर'' क्रूरता का ही उदाहरण है। गरीबी और अशिक्षा का बोलबाला था। जनता अन्धविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ी हुई थी वे अपनी कुवांरी कन्याओं और बहू बेटियों को शासक वर्ग और उनके मातहतों से बचाने के लिए बाल विवाह करते थे। उन्हें पर्दे में रखते थे, विधवाओं को जीवित जला दिया जाता था। शुरू में यह मजबूरी थी बाद में यही प्रथा बन गई। ऊपर से महामारी, अकाल से जीवन दूभर हो गया। दरबार छल कपट के केन्द्र बन गये थे। वैश्याएँ सामन्तों पर शासन करती थी।

इन सब बातों का कविता पर प्रभाव पड़ा और कविता कामिनी नख–शिख वर्णन कटि कटाक्ष की डोर में बंध कर रह गई।

1.1.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :

धार्मिक दृष्टि से यह युग सभ्यता और संस्कृति के पतन का युग था। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ ने अपनी अपनी उदारवादी नीति के कारण हिन्दु मुस्लिम में जो सहिष्णुता, प्यार, धार्मिक एकता बनाई थी वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण समाप्त हो गई।

धर्म के नाम पर बाह्य आडम्बर और भोग विलास के साधन जुटाये जाने लगे। विट्ठल नाथ की मृत्यु के बाद उनके बेटों ने विभिन्न शहरों में अपनी अपनी गद्दियाँ बना लीं जो विलास के केन्द्र बन गईं। ऐसे वातावरण में सूर की राधा और तुलसी की सीता एक साधारण रमणी बन कर रह गई। धर्मस्थान भ्रष्टाचार के केन्द्र बनते जा रहे थे। मन्दिरों में पायल की झन्कार और तबले की थाप पनपने लगी। पुजारी कामुक हो चले थे। अन्ध विश्वास के कारण जनता, पुजारी, पीर, मुल्लाओं के पास जाते थे और शोषण का शिकार होते थे। कृष्ण–लीला और राम–लीला का प्रचलन बढ़ा। इस प्रकार जनता की धर्म भावना उनके मनोविनोद का साधन भी बन गई। राधा कृष्ण राम सीता की आड़ में लौकिक नायक–नायिका के लुका–छिपी नाज–नखरे, कटि–कटाक्ष का खुलकर चित्राण हुआ ऐसे में 'सूर सागर' के स्थान पर 'ब्रज विलास' और 'चंडी कुच पंचाशिका' जैसे घोर शृंगार के विकृत उदाहरण सामने आए। तात्पर्य यह है कि यह युग विलास में डूबे राजा महाराजाओं, सामन्तों धनिक वर्गों और उनके दासों तक के कच्चे चिट्ठे का खुलासा करता है।

1.1.3.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ :

मुगल सम्राट शाहजहाँ की कला और साहित्य के प्रति अत्यधिक रूचि थी। उसके दरबार में अच्छे कवियों और कलाकारों का बड़ा सम्मान था अतः इस काल में कुछ अच्छे साहित्य की भी रचना हुई। इस समय मुगल दरबार की भाषा फारसी थी। उनके मुकाबले में हिन्दी कवियों को उतरना था जो बहुत

कठिन था। फारसी में लैला मजनू, शिरी फरहाद, गुलो–बुल के प्रेमपूर्ण किस्सों में मांसलता और चंचलता थी अतः रीतिकालीन कवियों को भी दरबार में अपना स्थान बनाने के लिये राधा कृष्ण के चरित्रा में यही मांसलता और चंचलता का रंग भरकर प्रतियोगिता में खड़ा होना पड़ा। वैसे औरंगजेब की कट्टरता के कारण हिन्दुत्व की रक्षा हेतु राजस्थान के ओरछा, कोटा, बूदी, जयपुर और जोधपुर आदि नरेशों ने अपने दरबारों में कवियों और कलाकारों को सरंक्षण दिया इससे श्रृंगारिक साहित्य हिन्दी में, हिन्दू दरबार में भी फलने फूलने लगा किन्तु कठोर प्रतियोगिता के कारण केवल चमत्कारपूर्ण, पांडित्य प्रदर्शनयुक्त साहित्य की ही सृष्टि अधिक हुई।

इसके अतिरिक्त कला एवं संगीत में विकास के अनुपम उदाहरण मिलते हैं।

1.1.4 प्रवृत्तियाँ :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल एक महत्त्वपूर्ण काल है। आदिकाल में चारण–भाट कवियों के द्वारा तत्कालीन राजा–महाराजाओं की वीरता से परिपूर्ण स्तुति पद लिखे गये थे भक्तिकाल में सात्विकता, तन्मयता और उदात्त चेतना का जो रूप साहित्य में दिखाई पड़ता है वैसा रीतिकाल में नहीं पाया जाता। मुगल सत्ता में हताश देशी राजाओं और सामन्तों ने सुरा–सुन्दरी में स्वयं को डूबो कर रख दिया। यही कारण है कि रीतिकाल का साहित्य घोर विलासिता का साहित्य माना जाता है। इस पाठ में हम रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के बाद आप :

* रीतिकालीन परिस्थितियों को पहचान सकेंगे।
* रीतिकाल की साहित्यिक विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे,
* रीतिकाल के साहित्य का शिल्प पक्ष समझा सकेंगे
* रीतिकालीन साहित्य और उनके आचार्य कवियों का विवेचन कर सकेंगे।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का समय सं. 1700 से 1900 तक का माना जाता है। इस युग का रीतिकाव्य पूर्णतः इहलौकिक एवं भौतिक दृष्टिकोण से रचा गया। दरबारी आश्रय में रहने वाले कवियों के यह हित में था कि वे वही साहित्य रचे जो आश्रयदाता को रूचिकर लगे। सभी छोटे, बड़े राजा–महाराजा, सामन्त सुरा सुन्दरी और विलासिता में आकण्ठ डूबे रहते थे अतः इस समय का साहित्य भी काम, सुरा और सुन्दरी के आस पास चक्कर लगाता रहा। इस तरह कवियों ने 'स्वान्तः सुखाय' के लिए नहीं अपितु धन प्राप्त करने के लिए 'स्वामिनः सुखाय' काव्य रचे और हर कविता या दोहे पर पुरस्कार स्वरूप अशर्फियों की चाह रखी। आगे हम रीतिकाल में रचित साहित्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे–

रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ –

रीतिकाल यद्यपि भोग विलास में लिप्त राजा–महाराजाओं का युग था तथापि ये देशी राजा–महाराजा और सामन्त स्वयं को दरबार में विज्ञ रसिक सिद्ध करने के लिए कुछ ऐसे उपाय भी चाहते थे जो उन्हें काव्य के संवाद में सहायता दे सकें। ऐसे में रीतिग्रन्थ उनकी इस कमी को पूरा करने में उपयोगी सिद्ध हुए। लक्षण ग्रंथों के अतिरिक्त इस युग में नीति, भक्ति, श्रृंगार वीर काव्य, स्वच्छन्द काव्य भी खूब रचे गये। संक्षेप में रीतिकाल की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. रीति ग्रन्थों का निर्माण :

रीति ग्रन्थों का निर्माण इस काल की प्रमुख विशेषता है। रीति ग्रन्थ का मतलब उन लक्षण ग्रंथो से है जिसमें काव्यांगों का लक्षण देकर उदाहरण स्वरूप स्वनिर्मित पद दिये जाते थे। उन्होंने परवर्ती संस्कृत आचार्यों के बोधगम्य शैली में लिखे गये लोकप्रिय ग्रन्थों का ही आधार लिया किन्तु संस्कृत आचार्यों के समान इन्हें सफलता नहीं मिली। संस्कृत में आचार्य कर्म और कवि कर्म दो पृथक् कर्म थे जिन्हें निभाने वाले संस्कृत में दो भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे हैं। किन्तु रीतिकाल में इन दोनों कर्मों को एक ही व्यक्ति के द्वारा निभाने का प्रयत्न किया गया है। इससे काव्य में सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण पर गहरा प्रभाव पड़ा क्योंकि रीतिकालीन विद्वानों में उस प्रौढ़ और सन्तुलित विवेचन शक्ति का अभाव था जो एक आचार्य के लिये आवश्यक होता है। इसलिए इन्हें आचार्य की कोटि में रखने पर आपत्ति की गई है। वस्तुतः ये विद्वान् केवल कवि थे किन्तु राजदरबार में आदर सम्मान और इनाम पाने के लिए इन्हें लक्षण ग्रन्थ लिखने पड़े। जबकि काव्यशास्त्रा में इनका अपना ज्ञान भी पूरा नहीं था। देखा जाए तो ये आचार्य थे ही नहीं, और न ही इनका उद्देश्य आचार्यत्व कर्म को गम्भीरता से करने का था। ये तो केवल कवियों और रसिकों को काव्यशास्त्रा के विषय से परिचित कराना चाहते थे। ये राजा महाराजा और सामन्त ऐसे विलासी रईस थे जिनमें तर्क की सूक्ष्मता को समझने की न शक्ति थी न अवकाश। इस काल के कवियों ने इनके छिछोरे मनोरंजन की आवश्यकता की पूर्ति की। ये कवि आचार्य सहृदय और कुशल कवि थे। इनका मूल उद्देश्य कविता करना था काव्यांगों का शास्त्रीय निरूपण नहीं। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन कवियों ने आचार्य बनने की धुन में अपनी रचनाओं के द्वारा रस, अलंकार, छन्द आदि के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

2. शृंगार वर्णन :

इस काल के साहित्य में शृंगार की प्रधानता है। इस समय का सामन्त वर्ग कामदेवता का उपासक था और नारी में काम रति का स्वाद ही उन्हें प्रिय था। इसलिये ये अपने जीवन में ही नहीं बल्कि कविता में भी शृंगार पसंद करते थे। अतः रीतिकालीन कवियों ने आश्रयदाताओं की रूचि और पसंद के अनुरूप शृंगार को कविता का आधार बनाया। मुक्त काव्य धारा को छोड़कर समुचा शृंगार साहित्य बीमार और विकृत सा दिखाई पड़ता है। इसके अनेक कारण थे। इन कवियों को भक्तिवाद से पूर्व की चली आ रही परम्परा का निर्वाह करने का भी चाव था और उन्हें इस तरह की तैयार सामग्री मिल भी रही थी। रीतिकालीन कवियों को भक्तिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण के नाम पर भरपूर सामग्री दी–निर्गुण सन्तों ने ''रति इह तन में संचरे'' कहकर प्रेम को जीवन का सार बताया, प्रेममार्गी सूफी कवि भी लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कर चुके थे, कृष्ण भक्ति काव्य और रामभक्ति काव्य में भी रसिक भाव की प्रतिष्ठा हो जाने के कारण शृंगार की रसराज के रूप में प्रतिष्ठा हो चुकी थी। संस्कृत काव्य शास्त्रा में भी रस, नायिका भेद, अलंकार आदि की शास्त्रीय आधार भूमि इन कवियों को प्राप्त हो गई। ऐसे में रीतिकालीन राजा–महाराजाओं–सामन्तों और रईसों के मादक सुरा–सुन्दरियों में डूबे विलासपूर्ण वातावरण ने रीतिकालीन कवियों के लिए शृंगार–चित्राण का मार्ग और भी साफ कर दिया ऐसे में इन कवियों ने प्रेम का बाह्या रूप ग्रहण कर शृंगार और रति के नग्न–अश्लील उदाहरण प्रस्तुत किये। उनके काव्य में राधा कृष्ण और राम सीता गलियों में बसे साधारण नायक नायिका भर रह गये। ऐसे में यह उक्ति ठीक है–

आगे के सुकवि रीझिहे तो जानो कविताई
न तू राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

अर्थात् उनकी कविता से यदि रस मर्मज्ञ रीझ गये तो कविता सफल हुई अन्यथा राधा कृष्ण की भक्ति का दोहा तो है ही।

इन कवियों के काव्य में शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग एवं उनके अन्तर्गत आने वाले भावों, रसों, दशाओं का खुलकर चित्राण किया है। विभिन्न त्यौहारों, पर्वों के माध्यम से नायक नायिका का मिलन कराने में इनका मन खूब रमा है। नायिका का नखशिख वर्णन तो मात्रा परम्परा का निर्वाह करने के लिए ही किया गया है। वियोग पक्ष के चित्राण में दसों दशाओं, स्मृति–चित्राों, मान आदि के साथ कहीं कहीं पर अध्यात्मक वर्णन भी मिलता है :

इत आवति चलि जात उत
चलि छ सातक हाथ
चढ़ि हिड़ौले सी रहि
लगि उसासनु साथ

नायिका विरह की आग में जलकर इतनी पतली हो गई है कि मौत उसे चश्मा लगाकर भी नहीं खोज पाती, गुलाब जल पड़ते ही सूख जाता है। सखियां कपड़े गीले करके ही उसके पास जा पाती है इत्यादि।

3. नारी चित्राण

रीतिकालीन कविता का विकास मुख्यतया राजदरबार में, सामन्तीय वातावरण में हुआ था। मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सामने देशी राजाओं महाराजाओं का तेज आहत हो चुका था। ऐसे समय में राज्याश्रित कवियों ने नारी के विलासात्मक, रंगीले, भड़कीले चित्रा उतार कर मानों अपने स्वामियों के विषाद और हताशा को दूर करने का प्रयास किया था। उनके कुच–कटाक्ष हाव–भाव शृंगार–सज्जा, अंग–प्रत्यंग के बारीक से बारीक नग्न, अश्लील चित्रा कविता में बांधते रहे। उनके सामने नारी मात्रा भोग विलास का एक उपकरण मात्रा थीं उनकी नायिका 'भरे भवन में' नायक से आँखें चार करने में, कभी लाल द्वारा उड़ाई जा रही पतंग की छाया को चूमती हुई दौड़ने में सुख पा रही है। मानो उसका कोई और रूप इस दुनिया में है ही नहीं। न वह जननी है और न गृहणी, न बहन है न देवी। बस एक छिछौरी प्रेमिका है जो नायक से मिलने का कोई भी अवसर खोना नहीं चाहती। इसीलिए आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने रीतिकालीन शृंगार भावना में रूग्णभावना का मिश्रण कहा है। रीतिकाव्य में नारी का मांसल, उत्तेजक, चंचल रूप ही अधिक चित्रित हुआ है।

4. प्रतियोगिता की भावना

रीतिकालीन कवियों में प्रतिस्पर्धा की भावना प्रबल थी। अपनी विद्वता, सर्वोत्कृष्टता को साबित करने के लिये उन्हें कभी कभी घिसे हुए, धुरूधंर, उर्दू फ़ारसी और हिन्दी कवियों से सामना कर अपना स्थान बनाना पड़ता था। प्रतिस्पर्धा की यह भावना संस्कृत आचार्यों में भी पाई जाती थी किन्तु उसमें कुशल गम्भीरता थी जो रीतिकाल में खत्म होने लगी थी। हिन्दी कवियों के सामने अपनी जीविका का प्रश्न भी था जिसे वे तभी पूरा कर सकते थे जब वे राजदरबार में अपना स्थान बना लें। रीतिकालीन राजा–महाराजा अपने आश्रित कवियों, आचार्यों को ज़मीन, ज़ायदाद, धन, अशर्फी आदि पुरस्कार स्वरूप देते रहते थे जिससे उनका पूरा परिवार पलता था, इसीलिए ये कवि अपने पाण्डित्य–प्रदर्शन में जी तोड़ प्रयास करते थे।

5. नीति–भक्ति काव्य :

नीति, भक्ति काव्य का सृजन भी रीतिकाल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत साहित्य में नीति काव्य की समृद्ध परम्परा थी। बाद में भक्तिकाल में भी कबीर, तुलसी, रहीम आदि की सूक्तियाँ मिलती हैं। इन सबका प्रभाव रीतिकालीन कवियों पर भी पड़ा। रीतिकाल में वृन्द, गिरिधर, घाघ, बेताक, दीनदयाल गिरि आदि के द्वारा रचित नीतिपरक रचनाएँ मिलती हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे कविता न कह कर सूक्ति साहित्य कहा है। क्योंकि इन सूक्तियों में विषय की विविधता और चमत्कार का पुट होते हुए भी रस की अनुभूति का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

इसी प्रकार रीतिकाव्य में भक्ति विषयक रचनाएँ खूब मिलती हैं पर इन सबके आधार पर रीति कवि को न तो अनन्य भक्त कहा जा सकता है न राजनीतिनिष्णात। भक्ति के विषय में नीचे की पंक्ति में स्पष्ट संकेत मिलता है–

रीझि है सुकवि तो जानो कविताई
न तु राधिका सुमरन को बहानो है।।

रीतिकालीन कवि का मुख्य प्रयोजन था किसी न किसी रसिक को रिझाना। पर न रीझने की स्थिति में राधा कृष्ण की भक्ति ही मान ली जाए, तो क्या बुरा है।

वस्तुतः रीतिकाल अनेक स्वादों का युग था जैसा कि बिहारी ने लिखा है –

करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद

वस्तुतः प्रतियोगिता की भावना के कारण रीतिकालीन कवि को राजदरबार में स्वयं को स्थापित करने के लिए अपनी बहुविज्ञता का प्रदर्शन करना पड़ता था। इसलिये उनकी कविता में नीति, भक्ति, राजनीति, ज्योतिष आदि से सम्बन्धित पद मिलते हैं। भक्ति काव्य के लिए कहा जा सकता है कि इस युग में राधा कृष्ण वैसे भी सामान्य नायक नायिका के रूप में परिणत हो चुके थे यह भी कह सकते हैं कि राधा कृष्ण की भक्ति को उन्होंने अपनी ढाल के रूप में प्रयुक्त किया हो, डा. नगेन्द्र ने तो भक्ति काव्य को रीतिकालीन कवियों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता माना है। वे कहते हैं ''जब कवि अतिशय श्रृंगार वर्णन के कारण मन में अपराध भावना का अनुभव करता है, तो राधा कृष्ण का स्मरण उनके भीरू मन को आश्वासन देता था और सामाजिक कवच का काम भी करता था।''

वस्तुस्थिति यह है कि रीतिकाल में कवियों ने विशेषकर रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने अनेक विषयों पर सुन्दर कविताएं प्रस्तुत कीं।

6. वीर काव्य :

रीतिकाल में श्रृंगार रस की रचनाओं के साथ साथ वीर रस की धारा भी मंद–मंचर गति से बह रही थी। शाहजहाँ के शासनकाल में सर्वत्रा सुख शान्ति का साम्राज्य था पर औरंगजेब की धर्माधता और कट्टरनीति ने इस शान्ति को अशान्ति में बदल दिया। उनके अत्याचारों का विरोध करने के लिये दक्षिण में शिवा जी, पंजाब में गुरू गोबिन्द सिंह और बन्दा बैरागी, राजस्थान में महाराज जसवंत सिंह और दुर्गादास, मध्य प्रदेश में छत्रा साल आदि वीर राजपूतों ने तलवारें उठा लीं। इनकी वीरता को प्रोत्साहित एवं सजग बनाये रखने के लिए भूषण, सूदन, पद्माकर, गोरे लाल, गुरू गोबिन्द सिंह जी ने ओजभरी वाणी में काव्य निर्माण किया और तत्कालीन जन–जागरण के प्रहरी बनकर काव्यक्षेत्रा में उतरे।

इन वीर रस के कवियों में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है। वीर रस के सभी भेद जैसे –दानवीर, युद्धवीर, दयावीर, धर्मवीर आदि का अंकन इस युग के वीरकाव्य में सफलता पूर्वक हुआ। इन वीर काव्यों की संख्या कम है अनुसंधान द्वारा इनकी संख्या पंजाब में रचित वीर काव्य 25 तथा अन्य स्थानों के लगभग 90 मानी जाती है। पंजाब में रचित वीर काव्य गुरुमुख लिपि में निबद्ध है। इन सभी वीर काव्यों में तत्कालीन राजनीतिक चेतना तथा युगबोध पर्याप्त मात्राा में है। संख्या में कम होते हुए भी हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा में इनका महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार किया जाता है।

7. स्वच्छन्द काव्य

रीतिकाल के अधिकांश कवि या तो लक्षण ग्रंथ लिखते थे या इन्हें आदर्श मानकर काव्य रचना करते थे। इस प्रवृति के अतिरिक्त एक अन्य धारा यानि स्वच्छन्द काव्यधारा भी चल रही थी। इन कवियों को रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्य धारा के कवि कहा गया है। इन कवियों ने न तो लक्षण ग्रंथ लिखे और न ही उनको आधार बनाया। इन्होंने रीतिकालीन समस्त रूढ़ियों, परम्पराओं का त्याग कर, नवीनता एवं मौलिकता से परिपूर्ण काव्य रचना की। इन काव्यों में नतोअलंकारों का बोझ है, न सुरा–सुन्दरी की अश्लीलता। इनका श्रृंगार–चित्राण स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। इनके प्रेम में कहीं भी चतुराई नहीं है, न छल–कपट। सर्वत्रा एकनिष्ट, त्यागपूर्ण, प्रणय ही चित्रित हुआ है। घनानन्द, सूदन, बोधा, ठाकुर आलम आदि कवियों ने अपने प्रेम की पीर को स्वच्छन्द काव्य में अभिव्यक्ति दी है। घनानन्द के एक उदाहरण में प्रेम का वर्णन है।

अति सूधो सनेह को मारग है
जहाँ नेकु सयानक बांक नहीं

इन कवियों ने प्रेम को तलवार की धार पर चलने के समान माना है –

यह प्रेम को पंथ कराल है जू
तलवार की धार पै धावनौ है।

बेताल कवि, घाघ कवि, वृन्द कवि गिरधर कविराय जैसे कवियों ने नीतिपरक, सूक्तिपरक रचनाएं की जो लोक समाज से सम्बद्ध हैं। ब्रहमज्ञान, वैराग्य–भक्ति के भी पद्य लिखे गये। इन कवियों ने मुक्तक काव्य भी लिखे और छोटे छोटे प्रबन्ध काव्य भी लिखे। गौरेलाल सूदन, गुरू गोबिन्द सिंह जी का नाम इसमें लिया जा सकता है। त्यौहार, पर्व, शिकार, जलविहार आदि का चित्राण कर इन कवियों ने अपनी संस्कृति का भी गुणगान किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि इस काव्यधारा में प्रत्येक कवि की रचना में सभी प्रकार से रीतिमुक्त धारा की स्वच्छन्दता की विशेषताएं प्रकट नहीं होती कुछ कवियों पर रीतिबद्धता का प्रभाव भी मिलता है फिर भी इनकी काव्यगत विशेषता में रीतिबद्ध काव्य और कवियों की अपेक्षा अनुभूति की गहनता विरह की मार्मिकता अधिक मिलने के कारण इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

1.1.5 शिल्प पक्ष

1. रीतिकाल की प्रमुख साहित्यिक भाषा ब्रज थी। ब्रजभाषा मधुर भाषा है। इसमें कोमल भावों की अभिव्यक्ति की अपार क्षमता विद्यमान होने के कारण रीतिकालीन कवियों ने इसका भरपूर प्रयोग किया। इसके कई कारण थे–एक तो ब्रज भाषा की प्रकृति मधुर है, दूसरे इस समय गद्य का प्रचलन अपनी

शैशव अवस्था में था। तीसरे ब्रजभाषा के अतिरिक्त किसी और भाषा में रचना करने वाले को उतना सम्मान नहीं मिल पाता था। इन अनेक विशेषताओं के कारण यह काल ब्रजभाषा का चरमोन्नति का काल था इसीलिए कवि चाहे पंजाब का हो या बुंदेलखण्ड का, झांसी का हो या राजस्थान का सभी ने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। पंजाब के गुरू गोबिन्द सिंह और आचार्य अमीरदास बुंदेलखण्ड के बिहारी और केशव इसके उदाहरण है। ब्रजभाषा में अवधी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी आदि भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी, तुरकी भाषाओं के अनेक शब्द खूब प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रवृति का दुष्परिणाम यह निकला कि शब्दों को तोड़ मरोड़ कर मनमाने प्रयोग होने लगे। रीतिबद्ध कवियों की कविता में लिंग एवं कारक सम्बन्धी दोष अधिक पाये जाते हैं जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाषा का विकृत प्रयोग नहीं किया। उन्होंने भाषा के शुद्ध प्रयोग और अर्थ क्षमता का पूरा पूरा ध्यान रखा, इसीलिए धनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि रीति मुक्त काव्य धारा के कवियों की भाषा अपेक्षाकृत परिनिष्ठित ब्रज भाषा का सुन्दर नमूना मानी जाती हैं।

2. छन्द

रीतिकाव्य दरबारी मनोवृत्ति का काव्य था इसलिए इस युग में मुक्तक काव्यरचना की प्रचुरता रही। मुक्तक काव्य के लिए कवि को कुछ चुने हुए छन्दों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। इसलिए इस युग में कवित, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा, बरवै और रोला जैसे छन्द ही प्रचलित हुए। यहाँ पर शृंगार चित्राण के लिए सवैया छन्द तो वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त, सवैया छन्द तो वीर रस के लिए अधिकतर कवित्त, भक्ति नीति के लिए दोहा छन्द का खूब प्रयोग हुआ। चिन्तामणि का छन्द विचार, मतिराम की वृत कौमुदी, भिखारीदास का छन्दोर्ण एवं पिंगल, अमीरदास का वृत चन्द्रोदय आदि इस युग के प्रसिद्ध छन्दशास्त्रा हैं।

3. अलंकार

इस युग की मुख्य विशेषता अलंकारों का भरपूर प्रयोग है शायद इसीलिए मिश्र बन्धुओं ने इस युग को 'अलंकृत काल' का नाम दिया। यद्यपि यह नाम बहुमत से स्वीकृत नहीं हुआ परन्तु इस युग में रचे गये लक्षण और लक्ष्य दोनों प्रकार के ग्रन्थों में अलंकारों को ही प्रधानता मिलती रही। इस समय चमत्कार प्रिय होने के कारण श्लेष, यमक और अनुप्रास का प्रयोग सबसे ज्यादा हुआ। बिहारी द्वारा प्रयुक्त यमक अलंकार का चमत्कार देखते बनता है–

तो पर वारौ उरवसी, सुनि राधिके सुजान
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान।

केशवदास की प्रसिद्ध उक्ति ''भूषण बिनु न विराजई कविता वनिता मित्त'' से रीतिकालीन कवियों की अलंकारप्रियता का ही संकेत मिलता है। किन्तु कहीं कहीं रीतिकवियों ने अलंकारों का इतना अधिक और व्यर्थ का प्रयोग किया है कि वे काव्य सौन्दर्य को बढ़ाने की अपेक्षा विकृत करते हैं। केशव को तो अति अलंकारप्रियता और दूर की कोड़ी पकड़ने के प्रयास के कारण ही ''कठिन काव्य का प्रेत'' कहा जाता है। वस्तुत ये आचार्य नहीं, बल्कि कवि थे और इनका काव्य–शास्त्रीय ज्ञान अधूरा था। इनके लक्षणों और उदाहरणों में पर्याप्त त्रुटियाँ हैं। इनमें से ज्यादातर कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुसरण ही किया कोई मौलिक सूझ बूझ का परिचय नहीं दिया, फिर भी अलंकारों का प्रयोग जितना इन कवियों ने किया, कविता कामिनी को अलंकारों से सजाया सवांरा वह प्रशंसनीय है।

4. काव्य रूप

रीतिकाल में काव्य रूपों की पर्याप्त विविधता पाई जाती है। प्रबन्ध, मुक्तक, सतसई साहित्य तथा शतक आदि सभी शैलियों में काव्य रचना होती रही पर इस युग का प्रधान काव्य रूप मुक्तक ही रहा। इसके अनेक कारण थे एक तो राजा महाराजाओं के पास समय कम होता है। ऐसी स्थिति में छोटे छन्दों में दो चार मुक्तक सुनाकर आश्रयदाता की वाहवाही पाई जा सकती थी और ईनाम आदि प्राप्त किये जा सकते थे। दूसरे शृंगार रस की प्रधानता ने जन जीवन और समाज के दूसरे पक्षों को उपेक्षणीय बना रखा था। तीसरे मुक्तक काव्य में अर्थ की दृष्टि से पूर्वापर सम्बन्ध नहीं होता परन्तु पाठक को स्वतन्त्रा रूप से रसलीन करने की क्षमता होती है। चौथे दरबार में अपनी कला का चमत्कार दिखाने, कवियों की परस्पर होड़ में एक दूसरे को परास्त करने में मुक्तक शैली का प्रभाव अधिक पड़ता था। इसलिए राजदरबारों में अपनी प्रतिभा का सिक्का जमाने के लिए अधिकांश कवि मुक्तक रचना को ही प्रश्रय देते रहे।

मुक्तक काव्य के अतिरिक्त इस समय प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये, इनमें सबलसिंह का 'महाभारत' ब्रजबासीदास का 'ब्रजविलास', सूदन का 'सुजानचरित', जोधराज का 'हम्मीर रासो', गोरे लाल का 'छत्रासाल प्रकाश' आदि उल्लेखनीय प्रबन्ध काव्य थे।

5. प्रकृति चित्राण

विश्व की सभी भाषाओं में प्रकृति चित्राण की परम्परा रही हैं। संस्कृत साहित्य प्रकृति चित्राण से भरा पड़ा है। हिन्दी में जायसी की नायिका नागमति के विरह से ही कौए काले हो गए। तुलसीदास के मृग, मीरा के पपीहे, कोयल, सूरदास के भ्रमर आदि मनुष्य के किसी न किसी संदेश के वाहक हैं। रीतिकालीन कवियों ने आदिकाल से चली आ रही प्रकृति वर्णन की इस परम्परा से स्वयं को जोड़ा है। उनका प्राकृतिक वर्णन उद्दीपन रूप में ही अधिक उपलब्ध है। प्रकृति चित्राण में बारहमासा, त्यौहार पर्व, मेला, जलविहार, आखेट, होली, फाग आदि का थोड़ा बहुत वर्णन मिलता है। हां सेनापति का प्रकृति चित्राण मनोहारी बन पड़ा है। वस्तुतः आश्रयदाताओं की रूचि की उपेक्षा करके कोई कवि दरबार में स्वयं को स्थापित नहीं कर सकता था और राजाओं सामन्तों की रूचि का केन्द्र नारी सौन्दर्य था अतः इस समय का प्राकृतिक वर्णन बहुत थोड़ा और सामान्य स्तर का ही रहा। कुछ उदाहरण है–

बिहारी कहते हैं –

सघन कुंज छाया सुखद शीतल सुरभि समीर
मन कहै जात अजौं वहैं वा जमुना के तीर।

इसी प्रकार पद्माकर की होली (होरी) का चित्राण सुन्दर बन पड़ा है–

छोनि पितम्बर कम्मर ते सु बिदा दई मीढ कपोलन रोरी
नैन नचाए कह मुस्काय, लला फिर आइयो खेलन होरी।

1.1.5.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. रीतिकाल के नामकरण पर चर्चा करें।

.....

.....

1.1.6 सारांश :

रीतिकालीन परिस्थितियों का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काल एक तरह से भोग विलास का काल था। इस युग में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ, अन्धविश्वासों और बाह्याडम्बरों का बोलबाला हुआ, राजा और प्रजा दोनों की शृंगारिकता के प्रति आसक्ति बढ़ी। कवियों ने भी युगानुरुप और आश्रयदाताओं की रूचि के अनुरूप काव्य रचे। रीतिकालीन कवियों ने इसी काल में आचार्य और कवित्व दोनों कर्म निभाने का प्रयास किया और यह परम्परा पूरे दो सौ वर्षों तक जारी रही।

इस प्रकार रीति काव्य दरबारी आश्रय में विकसित हुआ। इस समय लक्षण ग्रन्थ का निर्वाह संस्कृत काव्यशास्त्रा को आधार बना कर किया गया। नख शिख वर्णन, नायक नायिका भेद आदि विषयों पर इस युग के श्रेष्ठ कवि अपनी प्रतिभा का ह्रास कर रहे थे। ये कवि काव्यशास्त्रा के ज्ञाता नहीं थे किन्तु ज्ञाता होने का स्वांग रच रहे थे। इस काल में कथ्य की अपेक्षा शिल्पपक्ष में कवियों का मन अधिक रमा है। भाषा को अलंकारों, मुहावरों को सजाया गया। इससे भाषा की शक्ति में विस्तार एवं विकास अवश्य आया था परन्तु भाषा का रूप विकृत हो चला, कारक चिन्हों, लिंग सम्बन्धी दोषों से भाषा कुरूप हो गई। ऐसे में घनानन्द, ठाकुर आदि कवियों की भाषा परिनिष्ठित ब्रज भाषा का अपवाद बन कर रह गयी।

1.1.7 प्रश्नावली :

1. रीतिकाल के नामकरण पर विभिन्न विद्वानों के द्वारा दिये गए नाम और उनके औचित्य पर विचार कीजिए।
2. रीतिकालीन परिस्थितियों का सामान्य परिचय दें।
3. रीतिकाल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।
4. रीतिकालीन साहित्य के शिल्प पक्ष का विवेचन करें।

1.1.8 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. रीति काव्य की भूमिका – डॉ. नगेन्द्र

बी.ए. भाग–द्वितीय हिन्दी पत्रा : हिन्दी साहित्य

सैमेस्टर–III

पाठ संख्या : 1.2 लेखिका : डॉ॰ रजिन्दर कौर अनेजा

हिन्दी भाषा : उद्‌भव और विकास

रूपरेखा :

1.2.0 उद्देश्य
1.2.1 प्रस्तावना
1.2.2 हिन्दी भाषा की उत्पत्ति–सामान्य परिचय
1.2.3 भाषा के अर्थ में हिन्दी का प्रयोग
1.2.3.1 संस्कृत भाषा के रूप
1.2.3.2 हिन्दी की उत्पत्ति के विविधसोपान
1.2.4 हिन्दी की मूल आर्य भाषाएं
1.2.4.1 स्वयं जांच अभ्यास
1.2.5 सारांश
1.2.6 प्रश्नावली
1.2.7 सहायक पुस्तकें

1.2.0 उद्देश्य :

विभिन्न भारतीय भाषाओं के संदर्भ में हिन्दी भाषा का विशेष महत्त्व है। यह विश्व की असंख्य भाषाओं में से एक है। किसी भी भाषा का सम्पूर्ण अध्ययन एक विज्ञान है जिसमें सबसे पहले उसकी उत्पत्ति के मूल स्त्रोत को जानना आवश्यक होता है। हिन्दी भाषा के महत्त्व को उसके प्रयोग, विस्तार एवं व्यापक भूमिका की दृष्टि से समझा जा सकता है। इस इकाई में हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन किया जाएगा। इसे पढ़ने के बाद आप समझ सकेगें कि :

- भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग किस प्रकार होता है,
- हिन्दी भाषा की मूल उत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई,
- संस्कृत भाषा के रूप क्या हैं,
- हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास किस प्रकार हुआ, और हिन्दी भाषा के विकास के प्रमुख सोपान क्या हैं।

1.2.1 प्रस्तावना :

भारत में कई भाषाएं है। ये सभी भाषाएं अपनी–अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं और साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न हैं। हिन्दी भाषा एक विशाल देश की एकता का सूत्र है और सभी भाषाओं के बीच एक सेतु है। यह देश की राजभाषा है, उच्च शिक्षा के माध्यम की भाषा है और राष्ट्रीय स्तर पर सम्पर्क की भाषा है। यह एक आधुनिक भाषा है जो संस्कृत भाषा से विकसित हुई और विभिन्न–बोलियों के माध्यम से विस्तार पाकर एक आधुनिक भाषा बनी। हिन्दी भाषा के स्वरूप को जानने के लिए इसकी उत्पत्ति पर विचार करना आवश्यक है। इसके विकास का इतिहास

लगभग ई. 1000 से आधुनिक–काल तक का है जिसमें यह भाषा 17 बोलियों एवं लगभग 100 उपबोलियों में विकसित हुई है। इसका क्षेत्र भी अत्पन्त विस्तृत है और प्रमुख हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं–उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश।

1.2.2 हिन्दी की उत्पत्ति–सामान्य परिचय :

'हिन्दी' शब्द का सम्बन्ध 'हिन्द' या 'हिन्दू' से लिया जाता है। 'हिन्द' या 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से मानी जाती है –

1. परम्परावादी संस्कृत पण्डितों का मानना है कि 'हिन्दू' शब्द की व्युत्पत्ति हिन+दु से हुई है। 'हिन' का अर्थ नष्ट करना तथा 'दु' का अर्थ 'दुष्ट' है। अर्थात् हिन्दू का अर्थ दुष्टों का विनाश करने वाला है।
2. शब्द कल्पद्रम के पांचवें खण्ड में 'हीन+दुष्+डु' के आधार पर हिन्दू शब्द को स्पष्ट किया गया है जिसका अर्थ है हीनों या ओछों को दूषित करने वाला।
3. 'हिन्दू' शब्द का तीसरा अर्थ हीन+दु अर्थात् हीनों अथवा मलेच्छों का दलन करने वाला या दण्डित करने वाला।
4. हिन्दू शब्द मूलतः फारसी न होकर संस्कृत शब्द 'सिन्धु' का फारसी रूपान्तरण है। इसका सम्बन्ध 'स्यन्द' धातु से माना जाता है जिसका अर्थ द्रवित होना है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार प्राचीन इरानी साहित्य में भी 'हिन्दू' शब्द 'सिन्धू' नदी के तथा सिन्धू नदी के पास के प्रदेश दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। डॉ. उदयनारायण तिवारी भी मानते हैं कि ईरान अथवा फारस के निवासी 'सिन्धू' नदी के तट के प्रदेश को हिन्द तथा वहाँ के रहने वालों को हिन्दू कहते थे।

भारत देश के नाम के अर्थ में प्रयुक्त 'हिन्द' शब्द में ईरानी भाषा का विशेषण प्रत्यय ईक् जोड़कर हिन्द+ईक् = 'हिन्दीक' शब्द बना है। कालान्तर में अंतिम व्यंजन 'क्' का लोप हो गया तथा 'हिन्दी' शब्द 'हिन्द' के विशेषण रूप में प्रचलित हुआ। इस प्रकार हिन्दी शब्द मूल रूप 'हिन्द' से बना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ग्रीक के 'इंदिके', इंदिका, लेटिन के 'इंदिया' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति भी 'हिन्दीक' शब्द से मानी है।

1.2.3 भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' का प्रयोग :

भाषा के संदर्भ में हिन्दी शब्द पर विचार करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'हिन्दी' शब्द संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में कहीं नहीं मिलता। मुसलमानों के आगमन के पूर्व हमारी भाषा को सामान्यतः भाषा ही कहा जाता था।

आज का हिन्दी का रूप खड़ी बोली तक सीमित माना जाने लगा है जबकि इस भाषा का अपना विस्तृत क्षेत्र रहा है– इसमें ब्रज भाषा, अवधी तथा राजस्थानी भाषाओं में उपलब्ध साहित्य सम्मिलित रहा है। अतः हिन्दी केवल एक भाषा तक सीमित नहीं – इसका जातीय विस्तार है। यह पूरे भारत के मानचित्र पर राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। हिन्दी को सारे देश में व्यावहारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसीलिये इसे हम भारत को एक सूत्र में आबद्ध करने वाली भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं।

1.2.3.1 संस्कृत भाषा के रूप :

विद्वानों का कथन है कि हिन्दी जिस भाषा धारा के विशिष्ट देशिक और कालिक रूप का नाम

है, भारत में उसका प्राचीनतम रूप संस्कृत है। संस्कृत का समय 1500 ई. से 500 ई.पू. तक माना जाता है क्योंकि इस काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। इस बोलचाल की भाषा का शिष्ट और मानक रूप संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत भाषा के भी दो रूप हैं :–

1. वैदिक संस्कृत – जिसमें वैदिक साहित्य की रचना हुई है।

2. लौकिक संस्कृत – जिसमें बाल्मीकि, व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएं हैं।

1.2.3.1.1 वैदिक संस्कृत – वैदिक संस्कृत में रचित साहित्य निम्न प्रकार का है –

वेद (संहिताएं) – ऋक्, साम, यजु और अथर्व।

ब्राह्मण ग्रन्थ – ऐतरेय, शतपथ, तांडय आदि।

आरण्यक – ऐतरेय, बृद्ध आदि।

उपनिषद् – ईश, केन, कठ, प्रश्न आदि।

वेद शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ ज्ञान है। चारों वेदों में कुल मिलाकर वैदिक धर्म के स्वरूप का परिचय है, दर्शन का विवरण है और युग के जीवन का वर्णन है। ऋग्वेद में विभिन्न वैदिक देवताओं की स्तुतियां हैं। सामवेद में वैदिक मंत्रों का गान है। यजुर्वेद यज्ञ का विधान स्पष्ट करता है और अथर्ववेद जन–जीवन के अन्य पक्षों को उद्घाटित करता है।

वेदों के उपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना की गयी है। हर वेद के अपने–अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ये वेदों के व्याख्या ग्रन्थ हैं जिनमें कथाओं और आख्यान–उपाख्यानों के माध्यम से वैदिक मंत्रों की व्याख्या की गयी हैं।

आख्यक शब्द 'अख्य' से निष्पन्न होता है। विद्वान् इन्हें वानप्रस्थ आश्रम के ग्रन्थ मानते हैं। इनमें यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या है।

उपनिषद् वैदिक साहित्य के अंतिम सोपान कहलाते हैं। आख्यकों में जो आध्यात्मिक चिन्तन उभरा, वह उपनिषदों में परिपक्व हुआ। उपनिषद वेदों के दार्शानिक पक्ष को उद्घाटित करते हैं। इसीलिये इन्हें वेदों का सार भी कहा जाता है। इन ग्रन्थों में जीव, ब्रह्म, आत्मा, सृष्टि आदि पर आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत हैं।

1.2.3.1.2 लौकिक संस्कृत – वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य में दो प्रकार से अन्तर हैं। पहले दोनों में धर्म के स्वरूप में अन्तर है। वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान था जबकि लौकिक संस्कृत में भक्ति धर्म का स्वरूप प्रस्कुटित होता है। इसमें राम, कृष्ण दोनों अवतार प्रमुख देवता माने जाते हैं। दूसरा वैदिक संस्कृत की भाषा और लौकिक संस्कृत को भाषा में भी निश्चित रूप से अन्तर है। लौकिक संस्कृत का काल ई.पू. 500 से है। लौकिक संस्कृत के अधिकांश साहित्य का इतिहास ई.पू. 500 से 1500 ई. तक रचा गया। इसमें बाल्मीकि, व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएं हैं।

इस काल के अन्त तक मानक या परिनिष्ठित भाषा तो एक ही थी किन्तु इसकी तीन क्षेत्रीय बोलियां विकसित हो चली थीं जिन्हे पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी नाम से पुकारा जाता था।

1.2.3.2हिन्दी की उत्पत्ति के विविध सोपान :

संस्कृतकालीन बोलचाल की भाषा विकसित होते होते 500 ई.पू. के बाद इसमें काफी परिवर्तन आया और इस परिवर्तित भाषा को पालि की संज्ञा दी गयी। इसका काल 500 ई. पू. से पहली

ईसवी तक है। बौद्ध ग्रन्थों के अन्तर्गत पालि भाषा का जो रूप मिलता है, वह इस बोलचाल की भाषा का ही शिष्ट और मानक रूप था। इस काल तक क्षेत्रीय बोलियों की संख्या चार तक पहुँच गयी –

पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी और दक्षिणी। पहली ईसवी तक आते आते यह बोलचाल को भाषा और परिवर्तित हुई तथा पहली ई. से 500 तक इसका रूप प्राकृत से अभिहित किया गया। इस काल में कई क्षेत्रीय बोलियां विकसित हुईं, जिनमें मुख्य रूप से – शौरसेनी, पैशाची, व्राचड़, महाराष्ट्री, मागधी और अर्थ मागधी थी।

प्राकृतों से ही विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों का विकास हुआ है। अपभ्रंश का काल मोटे रूप से 500 ई. से 1000 ई. तक का है। आज के प्राप्त अपभ्रंश साहित्य में मुख्यतः भाषा के दो रूप–पश्चिमी और पूर्वी ही मिलते हैं। प्राकृत के मुख्यतः पांच क्षेत्रीय रूपों तथा आज की दस आर्य भाषाओं के बीच की अपभ्रंश रूप में प्राप्त कड़ी के क्षेत्रीय रूपों की संख्या छह और दस के बीच में ही होगी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अपभ्रंश के सभी क्षेत्रीय रूपों का अपभ्रंश साहित्य में प्रयोग नहीं हुआ। यदि विभिन्न प्राकृतों से विकसित अपभ्रंशों को किसी अन्य नाम के अभाव में प्राकृत नाम से अभिहित करें तो आधुनिक आर्यभाषाओं का जन्म अपभ्रंश के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से माना जाता है –

अपभ्रंश	–	**आधुनिक भाषाएं तथा उपभाषाएं**
शौर सेनी	–	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती।
पैशाची	–	लंहदा, पंजाबी
व्राचड़	–	सिंधी
महाराष्ट्री	–	मराठी
मागधी	–	बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया
अर्ध मागधी	–	पूर्वी हिन्दी

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति अपभ्रंश के शौर सेनी, अर्ध मागधी, और मागधी रूपों में हुई है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि हिन्दी भाषा 1000 ई. के लगभग जन्म लेकर विकसित होते होते अब लगभग 1000 वर्षों से भी अधिक की हो गयी है। इन 1000 वर्षों के इतिहास अथवा विकास को तीन रूपों में देखा जा सकता है।

1.2.3.2.1 आदि काल (1000 ई. से 1500 ई. तक)

1.2.3.2.2 मध्यकाल (1500 ई. सं 1800 ई. तक)

1.2.3.2.3 आधुनिककाल (1800 ई. से अब तक)

1.2.3.2.1 आदिकाल :– हिन्दी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश से बहुत अधिक निकट थी क्योंकि इसी से हिन्दी का उद्‌भव हुआ।

ध्वनिया – आदिकालीन हिन्दी में वही ध्वनियां प्रयुक्त होती थीं जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। अपभ्रंश में आठ स्वर थे – अ–आ, इ–ई, उ–ऊ, ए–ओ। ये आठों ही मूल स्वर थे। आदिकालीन हिन्दी में दो नये स्वर – ऐ–औ विकसित हो गये। इसी प्रकार च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे जो आदिकालीन हिन्दी में स्पर्श–संघर्षी हो गये।

व्याकरण – आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण 1000 या 1100 ई. के आसपास तक अपभ्रंश के बहुत निकट था। किन्तु धीरे–धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गये और हिन्दी के अपने रूप विकसित हो गये। 1500 ई. तक आते आते हिन्दी अपने पैरों पर खड़ी हो गयी और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गये।

शब्द भंडार – आदिकालीन हिन्दी का शब्द भंडार अपभ्रंश का ही था। किन्तु भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ होने के बाद आदिकालीन हिन्दी में तत्सम शब्दावली बढ़ने लगी। मुसलमानों के आगमन से पश्तो, अरबी, फारसी, तुर्की शब्द हिन्दी में आ गये। इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है।

1.2.3.2.2 मध्यकाल – इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द भंडार के क्षेत्र में निम्नलिखित परिवर्तन आये। ध्वनि के क्षेत्र में शब्दांत का 'अ' मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। 'ह' के पहले का 'अ' कुछ स्थितियों में 'ए' उच्चरित होने लगा।

व्याकरण के क्षेत्र में हिन्दी भाषा में से अपभ्रंश के रूप निकल गये। यह आदिकालीन भाषा की तुलना में अधिक वियोगात्मक हो गयी। भाषा के संयोगात्मक रूप कम हो गये।

उच्च वर्ग में फारसी का अधिक प्रचार होने के कारण हिन्दी वाक्य रचना फारसी वाक्य रचना से प्रभावित होने लगी।

शब्द भंडार की दृष्टि से इस काल में फारसी के लगभग 3500 शब्द, अरबी के 2500 शब्द, पश्तो के 50 शब्द (लगभग) तुर्की के 125 (लगभग) शब्द हिन्दी में आ गये।

इस काल में धर्म की प्रधानता होने के कारण राम–स्थान की भाषा अवधी, कृष्ण–स्थान की भाषा ब्रज में विशेष रूप में साहित्य रचना हुई।

1.2.3.2.3 आधुनिक काल :– आधुनिक कालीन हिन्दी में ध्वनिक्षेत्र में अनेक परिवर्तन आये। शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण हिन्दी–प्रदेश के क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़ 1947 तक सुशिक्षित लोगों में खूब प्रचलित हो गये। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में ऑ (कॉलिज, डॉक्टर, कॉफी) ध्वनि भी प्रयुक्त होने लग गयी।

व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी इस काल तक आते आते पूर्णतः वियोगात्मक हो गयी। प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण के कारण हिन्दी व्याकरण का रूप स्थिर हो गया।

शब्द भण्डार की दृष्टि से अंग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी में आ गये। अनेक पुराने शब्द नये अर्थों में प्रचलित हुए जैसे 'सदन' शब्द राज्य सभा या लोक सभा के लिये प्रयुक्त होने लगा। साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा बोलचाल के बहुत निकट हो गयी। उसमें अरबी, फारसी, अंग्रेजी के बहु प्रचलित शब्दों का प्रयोग होने लगा। आलोचना की भाषा में तत्सम शब्दावली का बहुत प्रयोग होने लगा। पारिभाषिक शब्दावली के दृष्टि से हिन्दी में विज्ञान, वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि की शब्दावलियां निर्मित हुई। अनेक शब्द अंग्रेजी और संस्कृत से लिये गये। अनेक नये शब्द बनाये गये। परिणाम स्वरूप हिन्दी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

1.2.4 हिन्दी की मूल आर्य भाषाएं :

हिन्दी को मूल आर्य भाषाओं से अभिप्राय है कि वे भाषाएं जिनका प्रभाव हिन्दी पर प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ा हो। हिन्दी का उद्‌भूत स्थान अपभ्रंश का शौर सेनी, अर्ध मागधी और मागधी रूप माना जाता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास काल 10वीं शताब्दी से माना जाता है तथापि अपभ्रंश काल के मध्य भाग से हिन्दी के आरम्भिक स्वरूप के दर्शन होने लग जाते हैं। यह सत्य है कि उस समय हिन्दी में बहुत कम साहित्य लिखा गया, उस पर अपभ्रंश का प्रभाव मानते हुए उसे प्राचीन हिन्दी अथवा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी कहा जाता है। हिन्दी की मूल आकार भाषाएं निम्नलिखित मानी जा सकती हैं –

1.2.4.1 पंजाबी :– पंजाब प्रदेश की भाषा पंजाबी है। मूल रूप में यह अमृतसर के आसपास की भाषा थी किन्तु वर्तमान काल में इसका क्षेत्र अम्बाला से लाहौर तक और जम्मू से भटिंडा तक फैला हुआ माना जाता है। इसकी उत्पत्ति पैशाची प्राकृत से हुई है। इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव भी माना जाता है। पहले यह लंडा लिपि में लिखी जाती थी, किन्तु सिखों के गुरु अंगद देव ने लंडा लिपि का बहिष्कार कर, उसे देवनागरी लिपि की विशेषताओं से युक्त कर गुरुमुखी लिपि के रूप में विकसित किया। इसकी प्रमुख बोलियां डोगरी, मालवाई, पोवाधी और माझी आदि हैं।

1.2.4.2 लंहदा :– भारत विभाजन के पश्चात् लंहदा प्रदेश पाकिस्तान में चला गया है। यह पश्चिमी पंजाब में बोली जाने वाली भाषा है। यह लंडा तथा फारसी दोनों ही लिपियों में लिखी जाती है। इसे स्वतन्त्र भाषा न मानकर पंजाबी की उपभाषा भी माना जाता है। इसको हिन्दवी, मुलतानी भी कहा जाता है। फरीद, वारिसशाह, नानक, कादरयार इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें उपलब्ध लोक साहित्य विशेष रूप से (मुलतानी) उल्लेखनीय है।

1.2.4.3 सिंधी :– इसका विकास सिंध प्रदेश के व्राचड़ अपभ्रंश से माना जाता है। यह सिंध प्रदेश की भाषा है। मध्यभाग में बोली जाने के कारण इसे बिचोली भी कहा जाता है। सिंधी साहित्य बिचोली में ही लिखा गया है। इसमें साहित्य के गद्य और पद्य दोनों ही रूप मिलते हैं। इस पर फारसी लिपि का प्रभाव है। इसको लंडा लिपि में लिखा जाता है, पर कभी–कभी गुरुमुखी लिपि में भी लिखा जाता है। सिंधी भाषा में अरबी, फारसी और संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। भारत के संविधान में स्वीकृत 15 भाषाओं में इसका नाम भी सम्मिलित है। विपुल साहित्य लेखन की दृष्टि से 18वीं शताब्दी को सिंधी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

1.2.4.4 गुजराती :– यह गुजरात प्रदेश और बंबई नगर के आसपास की भाषा है। आरम्भ में गुज्जर जाति राजस्थान और गुजरात में बस गयी थी। राजस्थानी और गुजराती में पाये जाने वाले साम्य का कारण भी यही गुज्जर जाति है। पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा से भी गुजराती का बहुत साम्य है। इसकी प्रमुख बोली काठियावाड़ी है। इसकी लिपि कैथी है। इसके शब्दों को बांधने हेतु शिरो रेखा नहीं लगती। 17वीं शताब्दी तक यह देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती थी। इसके प्रमुख साहित्यकार गोवर्धन त्रिपाठी, डॉ. ध्रुव, माना लाल, रमण लाल देसाई, काका कालेलकर आदि हैं।

1.2.4.5 राजस्थानी :– राजस्थान के बाहर यह सिंध के कोने तक और मध्यप्रदेश के मालवा तक बोली जाती है। इसे हिन्दी की उपभाषा अथवा राजस्थानी हिन्दी के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्राचीन राजस्थानी को डिंगल भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, मेवाड़ी आदि हैं। इसके प्रमुख साहित्यकार चंदवरदाई, दुरसाजी,

बांकीदास, सूर्यमल्ल आदि हैं। मीरा, दादू, हरिदास प्रमुख राजस्थानी संत कवि माने जाते हैं। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से माना जाता है।

1.2.4.6 पश्चिमी हिन्दी :– इसे राष्ट्र भाषा या भातृभाषा हिन्दी भी कहा जाता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश में व्यवहृत होने वाली हिन्दी भाषा ही पश्चिमी हिन्दी है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है। इसकी प्रमुख बोलियां बांगरू, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, कन्नौजी आदि हैं। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। हिन्दी में साहित्य रचना लगभग 1000 वर्ष पूर्व हो गयी थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्ध साहित्य की श्रेणी में आता है। सूर, कबीर, बिहारी, घनानंद, भारतेन्दु, हरिऔध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, दिनकर, जैनेन्द्र, अज्ञेय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा तथा नगेन्द्र इसके प्रमुख साहित्यकार हैं।

1.2.4.7 पूर्वी हिन्दी :– यह हिन्दी पश्चिमी हिन्दी प्रदेश के पूर्व में बोली जाती है। पूर्व में इसकी सीमा बिहार को छूती है। इसी कारण इस पर बिहारी और पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव है। यह उत्तर कौशल से दक्षिण कौशल के मध्य बोली जाती है। इसे कासली भी कहा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी और अवधी हैं। इसकी उत्पत्ति अर्ध मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। अवर्धी में विपुल मात्रा में साहित्य प्राप्त होता है। इसके प्रमुख कवि तुलसी, जायसी, मंझन, उसमान, जान, नूर मुहम्मद, मानदास, बाबा चरणदास आदि हैं। इसकी प्रमुख साहित्यिक कृतियां–राम चरित मानस, पद्भावत, मधु मालती आदि हैं। अवधी को देवनागरी लिपि में लिखा जाता है।

1.2.4.8 बिहारी :– यह बिहार में पूर्वी हिन्दी प्रदेश से बंगला प्रदेश के मध्य तक बोली जाती है। बिहार के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, वाराणसी, मिर्जापुर, आजमगढ़, बस्ती, गोरखपुर जिलों में भी बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति मागधी उपभ्रंश से मानी जाती है। इसकी प्रमुख बोलियां मगधी और मैथिली हैं। इसमें साहित्यिक दृष्टि से मैथिली अधिक समृद्ध है। मैथिली देवनागरी में ही लिखी जाती है।

1.2.4.9 उड़िया :– यह उड़ीसा प्रदेश की भाषा है। इसका प्राचीन नाम कालिंग और उत्कल था। उड़िया लिपि का विकास देवनागरी से हुआ है। इसकी प्रमुख बोली भत्री है। इसमें तेलगु और मराठी शब्दों का प्राचुर्य है। उड़िया में 11–12वीं शती के कुछ शिला लेख भी मिलते हैं। इसमें कृष्ण भक्ति साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है।

1.2.4.10 बंगला :– यह भारत की समृद्ध भाषाओं में एक है। इसकी दो शाखाएं – पूर्वी बंगला – इसका केन्द्र ढाका है, जो आजकल बंगलादेश में हैं।

–पश्चिमी बंगला– इसका केन्द्र कोलकाता में हैं। इसकी उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से मानी जाती है। इसमें संस्कृत के साथ–साथ फारसी, अंग्रेजी के शब्द भी मिलते हैं। इसकी अपनी लिपि है जो देवनागरी से बहुत प्रभावित है। साहित्यिक दृष्टि से यह भाषा बहुत समृद्ध है। बंगला के आधुनिक साहित्यकारों में – रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, राजा राम मोहन राय, शरत्चन्द्र, ताराशंकर, विमलमित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

1.2.4.11 असमी :– यह बंगला से मिलती–जुलती दक्षिण असाम की भाषा है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। इसकी लिपि बंगला के समान है। इसमें इतिहास और विज्ञान

सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा में है। इसमें कृष्ण भक्ति साहित्य भी रचा गया है। इसके पुराने कवियों में हेम, माधव, कंदली, शंकर देव और आधुनिक साहित्यकारों में लक्षमी नाथ बरूआ, देवकांत, नीलमाणी, रजनीकांत, ज्योति प्रसाद आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

1.2.4.12 मराठी :– महाराष्ट्र प्रदेश में प्रयुक्त भाषा को मराठी कहा जाता है। इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। इसे द्रविड़ प्रदेश की भाषाओं की निकटतम भाषा भी कहा जाता है। इसकी अपनी लिपि मौड़ी है। इसे देवनागरी लिपि में भी लिखा जाता है। इसकी प्रमुख बोलियां कोंकणी, हलवी, खड़ी बोली मराठी आदि है। इसमें प्रचुर मात्रा में साहित्य रचना हुई है। मराठी के आरम्भिक नमूने 10वीं शताब्दी से ही प्राप्त होने लग गये थे। मराठी के प्राचीन साहित्यकारों में नामदेव, ज्ञान देव, तुकाराम, रामदास, महीपति श्रीधर, मोरोपंत राम जोशी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें साहित्य की लगभग सभी विधाओं में (नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, एंकाकी) साहित्य रचना हुई है।

1.2.4.1स्वयं जांच अभ्यास

1. पश्चिमी हिन्दी का विकास किस अपभ्रंश से हुआ है?

.....

.....

.....

1.2.5 सारांश :

स्पष्ट है कि हिन्दी जो पांच उपभाषाओं अथवा बोली समूहों (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्ध मागधी, तथा मागधी अपभ्रंश से 1000 ई. के आसपास उद्भूत हुई है। साहित्य के इतिहासों में कुछ लोगों ने हिन्दी का प्रारम्भ और भी बाद में माना है, किन्तु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नहीं हो जाता। जब किसी भाषा के जन्मने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है तथा वह बहुस्वीकृत हो जाती है तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस प्रकार यदि 1550 ई. के आसपास से भी हिन्दी साहित्य मिले तो उस भाषा का आरम्भ 1000 ई. के आसपास ही मानना पड़ेगा। हिन्दी भाषा की मूल उत्पत्ति संस्कृत भाषा के वैदिक तथा लौकिक रूपों से हुई है। इसके विकास को हम आदिकालीन हिन्दी, मध्यकालीन हिन्दी तथा आधुनिककालीन हिन्दी के रूप में समझ सकते हैं। इन तीनों कालों में हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था, व्याकरण व्यवस्था, शब्द भण्डार, तथा उसका साहित्यिक प्रयोग सभी पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी की मूल आकर भाषाएं जैसा पंजाबी, लंहदा, सिंधी, गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी तथा मराठी आदि पर संक्षिप्त रूप से विवेचन किया गया है।

1.2.6 प्रश्नावली :

1. हिन्दी शब्द से क्या अभिप्राय है ?
2. भारत की प्राचीनतम भाषा आप किसे मानते हैं ?
3. 'पालि' भाषा का सम्बन्ध किससे माना जाता है ?
4. प्राकृत भाषा में कौन सा साहित्य लिखा गया है ?

5. हिन्दी की उत्पत्ति किस भाषा से मानी जाती है ?

(इन प्रश्नों के लघुउत्तर 5–6 पंक्तियों में दीजिए)

1.2.7 सहायक पुस्तकें

1. हिन्दी भाषा का इतिहास – भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा का उद्‌भव और विकास – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

पाठ संख्या : **1.3** लेखिका : डॉ॰ रजिन्दर कौर अनेजा

हिन्दी भाषा के विविध रूप, शब्द भण्डार

रूपरेखा :

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना
1.3.2 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों के आधार
1.3.2.1 ऐतिहासिक आधार
1.3.2.2 भौगोलिक आधार
1.3.2.3 प्रायोगिक आधार
1.3.2.4 निर्माण रूप आधार
1.3.3 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूप
1.3.3.1 मूल भाषा
1.3.3.2 व्यक्ति बोली
1.3.3.3 उपबोली
1.3.3.4 बोलचाल की भाषा
1.3.3.5 रचनात्मक भाषा
1.3.3.6 राष्ट्र भाषा
1.3.3.7 राज भाषा
1.3.3.8 सम्पर्क भाषा
1.3.3.9 संचार भाषा
1.3.4 शब्द भण्डार से अभिप्राय
1.3.4.1 तत्सम शब्द
1.3.4.2 अर्ध तत्सम शब्द (तद्भव शब्द)
1.3.4.3 देशज शब्द
1.3.4.4 आगत शब्दावली
1.3.4.5 स्वयं जांच अभ्यास
1.3.5 सारांश
1.3.6 प्रश्नावली
1.3.7 सहायक पुस्तकें

1.3.0 उद्देश्य :–

भाषा के विविध रूपों की कल्पना विभिन्न परिस्थितियों तथा अवस्थाओं में मनुष्य के धारण किये हुए रूपों से की जा सकती है। खेतों में काम करते समय उसे कृषक कहते हैं, सामान ढ़ोते

समय मज़दूर कहते हैं। पढ़ाते समय अध्यापक कहते हैं, नाव चलाते समय मल्लाह और पालकी ढोते समय कहार कहते हैं। यही स्थिति भाषा की है। आन्तरिक गठन में एक होकर भी परिस्थिति अथवा प्रयोजनवश भाषा विविध रूप धारण कर लेती है। कभी वह 'बोली' होती है, कभी 'उपभाषा' कभी 'बानी' कहलाती है तो कभी 'आदर्श भाषा'। कभी उसे 'साहित्यिक भाषा' कहते हैं तो कभी 'बोलचाल की भाषा' जैसे नामों से अभिहित की जाती है।

1.3.1 भूमिका :–

भाषा के विविध रूप मनुष्य की लेखन शैली द्वारा परिलक्षित होते हैं। ये रूप ने केवल बोलचाल में भिन्न होते हैं ब्लकि वाक्यों, शब्दों के प्रयोग तक में भिन्न होते हैं। कालिदास द्वारा प्रयुक्त संस्कृत बाल्मीकि से भिन्न है। प्रसाद की हिन्दी, प्रेमचन्द की हिन्दी से भिन्न है। अंग्रेज़ी में मिल्टन और शेक्सपीयर के भाषा प्रयोग परस्पर भिन्न हैं। ये भाषा रूप व्यक्तित्व की भिन्नता के कारण उत्पन्न होते हैं और भाषा के उध्यपन में महत्त्व पाने लगते हैं। इस पाठ में भाषा के विभिन्न रूपों में बोलचाल की भाषा, रचनात्मक भाषा, राष्ट्र भाषा, राजभाषा, सम्पर्क भाषा और संचार भाषा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

1.3.2 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूपों के आधार :–

सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के अनेक रूप आते हैं। भाषा के इन रूपों के निम्नलिखित आधार हैं –

इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता।

1.3.2.1 ऐतिहासिक आधार – एक ही भाषा के इतिहास के एक समय में जो रूप था उसे संस्कृत कहा जाता है, दूसरे समय में जो रूप था उसे पालि कहा जाता है। इसी प्रकार प्राकृत और अपभ्रंश भी भाषा के ऐतिहासिक रूप के अन्तर्गत आते हैं।

1.3.2.2 भौगोलिक आधार – अपभ्रंश के बाद जो भाषा का संस्कृत, पालि, प्राकृत की परम्परा में जो रूप आया उसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषा कह सकते हैं और इसी का भौगोलिक रूप पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा बंगाली आदि हैं।

1.3.2.3 प्रायोगिक आधार – इसके अन्तर्गत देखा जाता है कि भाषा का प्रयोग कौन करता है, किस विषय के लिये प्रयोग होता है। यह प्रयोग साधु है या असाधु। इसके आधार पर ही जातीय भाषा, व्यावसायिक भाषा, राज भाषा, राष्ट्र भाषा, साहित्यिक भाषा, गुप्त भाषा, राजनयिक भाषा, परिनिष्ठित भाषा, अपभाषा, टकसाली भाषा, विकसित–अविकसित भाषा, शुद्ध–अशुद्ध भाषा, मृत–जीवित भाषा, प्रचलित एवं अल्पप्रचलित भाषा जैसे प्रयोग होते हैं।

1.3.2.4 निर्माण रूप आधार – यदि किसी भाषा का निर्माता समाज है, वह परम्परागत रूप से चली आ रही है तो उसे भाषा कहते हैं और यदि एक–दो व्यक्तियों ने उसका निर्माण किया है तो उसे कृत्रिम भाषा कहते हैं।

1.3.3 हिन्दी भाषा के विभिन्न रूप :–

भाषा के विभिन्न रूपों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है –

1.3.3.1 मूल भाषा – भाषा का यह रूप ऐतिहासिक है। किसी एक स्थान की भाषा जो आरम्भ में उत्पन्न हुई होगी तथा आगे चलकर जिससे ऐतिहासिक और भौगोलिक आदि कारणों से अनेक भाषाएं, बोलियां तथा उपबोलियां आदि बनी होगी, मूल भाषा कही जायेगी।

1.3.3.2 व्यक्ति बोली – एक व्यक्ति की भाषा को व्यक्ति बोली कहते हैं। यह भाषा का संकीर्णतम रूप है। इसमें आदि से अंत तक कुछ न कुछ परिवर्तन अथवा विकास होता रहता है।

1.3.3.3 उपबोली – भाषा का यह रूप भूगोल पर आधारित है। इसका प्रयोग एक छोटे से क्षेत्र में होता है। यह बहुत सी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – 'किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप, जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अन्तर न हो, स्थानीय बोली या उपबोली कहलाता है। एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियां होती हैं।'

1.3.3.4 बोलचाल की भाषा – विचारों की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा ही मनुष्य को एक–दूसरे के निकट लाती है। सम्प्रेषण के लिये भाषा के दो साधन हैं। एक तो मनुष्य बोलकर अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकता है, दूसरे लिखकर वह अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकता है। इसी को क्रमशः बोलचाल की भाषा और लिखित भाषा कहते हैं। मनुष्य जन्म के कुछ वर्षों के बाद ही अपनी भाषा बोलना आरम्भ कर देता है जबकि लिखित भाषा से उसका परिचय तब होता है जब वह शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्कूल जाता है। बोलचाल की भाषा वह अपने परिवेश से स्वतः सीखता है। भाषा बोलने का इतिहास तो मानव जन्म के साथ जुड़ा हुआ है जबकि लिखना उसने बहुत बाद में सीखा। इसी को मौखिक भाषा भी कहते हैं। बोलचाल की भाषा वस्तुतः काल सापेक्ष, गतिशील तथा नश्वर या अस्थायी होती है। यह उस समय उत्पन्न होती है जब वक्ता और श्रोता एक–दूसरे के समक्ष उपस्थित रहकर वार्तालाप कर रहे होते हैं या वक्ता के मन में कोई विशिष्ट श्रोता या श्रोता वर्ग विद्यमान रहता है। रेडियो या दूरदर्शन पर अनेक ऐसे कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं जिनमें वक्ता के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से श्रोता उपस्थित नहीं होता। इनके श्रोता बहुत दूर बैठकर इन कार्यक्रमों को देखते एवं सुनते हैं। भाषा संरचना की जटिलता एवं गठन बोलचाल की भाषा में प्रायः नहीं होता। यह अत्यंत सहज, स्वाभाविक एवं तीव्र गति से उत्पन्न होती हैं। इसमें संरचनागत जैसी जटिलता एवं कसाव आना असंभव सा होता है। यही कारण है कि बोलचाल की भाषा में प्रायः शिथिल संरचनाएं देखने को मिलती हैं। बोलचाल की भाषा में सम्प्रेष्य को संदर्भ से समझा जाता है। इसमें परस्पर आदान–प्रदान होने के कारण बोधन के अन्तराल को तुरन्त स्पष्ट कर लिया जाता है। बोलचाल की भाषा में अनेक ऐसी प्रयुक्तियां भी दिखाई देती हैं जिन्हें लेखन में अभिव्यक्त करना असंभव होता है।

1.3.3.5 रचनात्मक भाषा – इसे सृजनात्मक अथवा साहित्य रचना की भाषा भी कहते हैं। साहित्यिक रचनाएं मानक भाषा के आधार पर ही होती हैं। जिस भाषा क्षेत्र में शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार होता है उसमें मानक भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तराल कम होता है, किन्तु जहाँ साक्षरता समाज के कुछ वर्गों तक सीमित रहती है वहाँ मानक भाषा और साहित्यिक भाषा में अन्तर अधिक रहता है। यदि साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा समय की गति के अनुसार परिवर्तित नहीं होती तो उसका जीवन्त कथ्य रूपों से सम्बन्ध बिल्कुल टूट जाता है। वह मृत भाषा हो जाती है। यह स्थिति मध्य भारतीय आर्य भाषा काल में संस्कृत साहित्य में देखी जा सकती है।

समकालीन साहित्य की भाषा मानक भाषा के अधिक निकट है। इसका कारण यह है कि साहित्यिक भाषा लिखी जाती है, मानक भाषा बोली जाती है। मानक भाषा में भाषिक व्यवस्थाओं

और संरचनाओं की निश्चित्ता होती है जबकि साहित्य में साहित्यकार इस सामान्य संरचना के अतिरिक्त व्यवस्थाओं के नये प्रयोग करता है, शब्दों को नवीन अर्थ प्रदान करता है। इसी कारण साहित्यिक भाषा में भाषिक तत्त्वों को ही योजना नहीं होती उसमें शैली के उपादान भी समाहित होते हैं।

1.3.3.6 राष्ट्र भाषा – प्राचीन भारत में कभी संस्कृत, पालि, शौरसेनी, प्राकृत, अपभ्रंश, आदि राष्ट्र–भाषा के स्थान पर सुशोभित रही हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा राष्ट्र भाषा थी आज यही कार्य खड़ी बोली हिन्दी कर रही है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्र भाषा पर विचार में' राष्ट्र के स्वरूप को विस्तृत रूप से वर्णित किया हैं। उनका कथन 'इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि हमारी सच्ची राष्ट्र भाषा वही हो सकती है जिसकी प्रवृत्ति राष्ट्र की प्रवृत्ति हो और जो राष्ट्र के साथ सती होने के लिये सदा तैयार रहे। जिस भाषा को राष्ट्र की परम्परा से प्रेम नहीं, जिस भाषा को राष्ट्र के गौरव का ध्यान नहीं, जिस भाषा में राष्ट्र की आत्मा नहीं, वह भाषा राष्ट्र की भाषा क्योंकर कही जा सकती है ? किसी भी राष्ट्र भाषा के लिये यह अनिवार्य है कि उसके शब्द–शब्द 'राष्ट्र–राष्ट्र' की पुकार मचाने वाले हो और अराष्ट्रीय भावों को धर–दबाने वाले हों। यदि उसके शब्द में यह राष्ट्र निष्ठा और यह राष्ट्र शक्ति नहीं, तो वह राष्ट्र भाषा तो है ही नहीं और चाहे जो कुछ हो।''

स्पष्ट है कि किसी राष्ट्र में एक छोर से दूसरे छोर तक बोली और समझी जाने वाली भाषा ही राष्ट्र भाषा कहलाती है। यह देश में सर्वाधिक प्रचलित, विचार सम्पर्क की विविध संभावनाओं से पूर्ण, उच्च कोटि के विशाल साहित्य से सम्पन्न, सरल लिपि संयुक्त, राष्ट्र के कण कण में देश की सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार करने वाली होती है। यह सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की, राष्ट्रीयता की भावना से राष्ट्र–हृदय को आन्दोलित करने की, तथा राष्ट्रीय गौरव की महत्ता प्रदर्शित करने की असीम शक्ति धारण किये रहती है। राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण देश में संचरण करने वाली राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता के द्वारा व्यवहृत अखिल देशीय संपर्क भाषा होती है। यह अपने राष्ट्रीय आदर्शों और सांस्कृतिक मान्यताओं का डंका पीटने का काम करती है राष्ट्र भाषा हिन्दी ही पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ने का काम करती है।

1.3.3.7 राज भाषा – राज भाषा का शाब्दिक और सामान्य अर्थ है 'राजकाज की भाषा', जिसमें राजकाज किया जाता है। एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था के लिये इसी भाषा का प्रयोग होता है। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा समस्त पत्र–व्यवहार, राज कार्य इसी भाषा में चलाया जाता है। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने राजभाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि – राजभाषा का प्रयोग मुख्यतः चार क्षेत्रों में अभिप्रेत है – शासन, विधान, न्याय पालिका और कार्य पालिका। इन चारों क्षेत्रों में जिस भाषा का प्रयोग होता है उसे राज भाषा कहते हैं। राजभाषा किसी देश अथवा राष्ट्र की प्रशासनिक भाषा होती है। इसका राजनीतिक महत्त्व होता है। प्रशासनिक उलट–फेर या परिवर्तन से राजभाषा परिवर्तित हो जाती है। जैसे अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजी राजभाषा बन बैठी।

राजभाषा किसी भी राष्ट्र की बुद्धि है और राष्ट्र भाषा उसका हृदय। किसी भी देश की सुख समृद्धि के लिये राजभाषा और राष्ट्रभाषा में एकरूपता होनी अनिवार्य है। हिन्दी के राज भाषा के रूप में कुछ समस्याएं हमारे सामने आयी हैं। जैसे– हिन्दी का रूप क्या है ? हिन्दी में सर्वमान्य

शब्दावली का निर्माण किस पद्धति से किया जाये ? देवनागरी लिपि को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार कैसे सक्षम बनाया जाये ? हिन्दी का प्रचार करने और अध्ययन–अध्यापन का स्तर उँचा करने के लिये क्या क्या किया जाये ?

इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी कहते हैं – किसी भी भाषा के राजभाषा बनने के लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं –

1. सरकारी कर्मचारी के लिये वह भाषा सरल होनी चाहिये।
2. भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसके माध्यम से पूरे भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार–विनिमय हो सके।
3. उस भाषा का भारत के बहुसंख्यक लोग प्रयोग करते हों।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिये भी सरल होनी चाहिये।
5. ऐसी भाषा का चुनाव करने में अल्पकालिक या वर्तमान लाभ ही न देखकर उसके प्रति दूरदर्शी होना चाहिये।

राज भाषा के रूप में हिन्दी की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न लिखित हैं जो उसे हिन्दी के अन्य रूपों से अलगाती हैं –

1. राज भाषा हिन्दी की अभिधात्मकता उसे साहित्यिक हिन्दी से अलगाती है।
2. साहित्यिक हिन्दी में एकाधिकार्थकता होती है, जबकि राज भाषा हिन्दी में सभी स्तरों पर एकार्थकता ही काम्य होती है।
3. राज भाषा हिन्दी अपने पारिभाषिक शब्दों में भी हिन्दी की अन्य प्रयुक्तियों से अलग है। इसमें काफी सारे शब्द ऐसे हैं जो मूलतः इसी के हैं और यदि अन्य प्रयुक्तियों में भी प्रयुक्त होते हैं, तो इसी से लेकर। जैसे –

   आयुक्त (Commissioner)
   निविदा (Tender)
   मंत्रालय (Ministry)
   प्रशासकीय (Administrative)

राजभाषा, भाषा के उस रूप को कहते हैं जो राज–काज में प्रयुक्त होता है। भारत की आजादी के बाद एक राजभाषा आयोग की स्थापना की गयी। उसी आयोग ने यह निर्णय लिया कि हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाया जाये।

1.3.3.8 सम्पर्क भाषा – सम्पर्क भाषा से तात्पर्य है उस भाषा रूप से जो समाज के विभिन्न तबकों के बीच सम्पर्क में काम आती है। हिन्दी इस दृष्टि से बोली बोलने वाले वर्गों के बीच सम्पर्क भाषा है और भारत के अन्य क्षेत्रों में भाषाएँ बोलने वालों के बीच सम्पर्क भाषा है। शासन के विभिन्न अंगों में पूरे देश को जोड़ने के लिये हमने राज भाषा को अपनाया है। इस प्रकार राजभाषा औपचारिक रूप से देश की सम्पर्क भाषा है। राजभाषा के माध्यम से ही देश के विभिन्न विधायी निकाय एक दूसरे से सम्पर्क कर पाते हैं, विभिन्न न्यायालय एक समन्वित इकाई के रूप में काम कर पाते हैं और देश के विभिन्न कार्यालय एक दूसरे से सम्पर्क कर पाते हैं। डॉ. ग्रियर्सन का कथन है कि भाषा और बोली में वही सम्बन्ध है जो पहाड़ तथा पहाड़ी में। जैसे एवरेस्ट पहाड़ है और हालवर्न पहाड़ी। इन दोनों के मध्य विभाजक रेखा को बताना कठिन होता है। सम्पर्क से अभिप्राय सम्बन्ध ही है। एक भाषा के माध्यम से द्वितीय भाषा, अन्य भाषा

तथा विदेशी भाषा को समझना ही भाषाओं में परस्पर सम्पर्क स्थापित करता है। भाषाओं का यह सम्पर्क कई कारणों से होता है। जैसे –

– सामाजिक सम्पर्क
– धार्मिक सम्पर्क
– साहित्यिक सम्पर्क
– राजनीतिक सम्पर्क
– शैक्षिक सम्पर्क।

1.3.3.8.1 सामाजिक सम्पर्क – विवाह, खेल कूद, मेला आदि से विभिन्न भाषिक समुदायों को एक–दूसरे से मिलने तथा अपने भावों को अभिव्यक्त करने का मौका मिलता है। ऐसे अवसरों पर अपनी बोली को छोड़कर उन्हें सम्पर्क भाषा का व्यवहार करना पड़ता है।

1.3.3.8.2 धार्मिक सम्पर्क – धार्मिक कारणों से भी सम्पर्क भाषा का विस्तार होता है। देश के कोने–कोने में स्थापित तीर्थों में प्राचीन काल से आजतक संस्कृत का वर्चस्व दिखाई देता है। संस्कृत के स्थान पर अब सामान्य सम्पर्क का माध्यम हिन्दी हो गयी है। प्राचीन काल में धर्म–भाषा संस्कृत में अनेक दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की जाती थी। दक्षिण के आचार्यों ने संस्कृत को ही माध्यम भाषा बनाया था। आज संस्कृत का प्रयोग यद्यपि सामान्य जनों के द्वारा नहीं किया जा रहा है फिर भी पूजा–पाठ, यज्ञ–यजन, विवाह आदि कृत्यों में संस्कृत भाषा में ही मंत्र पढ़े जाते हैं।

1.3.3.8.3 साहित्यिक सम्पर्क – बोली को भाषा बनाने में साहित्यिक रचनाओं का विशेष महत्त्व है। जब कोई बोली व्यापक साहित्यिक भाषा बनती है तो वह अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को लांघकर अन्य बोलियों के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है। अन्य क्षेत्रों से वह बहुत कुछ प्रभाव भी ग्रहण करती है इससे उसका एक व्यापक भाषित रूप निर्मित हो जाता है।

1.3.3.8.4 राजनीतिक सम्पर्क – किसी बोली या भाषा के प्रयोक्ताओं के राजनीतिक वर्चस्व के साथ भाषा का भी वर्चस्व स्थापित हो जाता है। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण विश्व में अपना उपनिवेश स्थापित किया था जिससे अंग्रेजी सम्पूर्ण विश्व में प्रसार पा गयी। अंग्रेजी की जहाँ प्रभुसत्ता नहीं है, वहाँ भी अंग्रेजी की प्रभुसत्ता है जैसे – भारत ! संस्कृत, पालि, हिन्दी आदि भाषाओं के प्रचार–प्रसार में राजनीति का उल्लेखनीय योगदान है।

1.3.3.8.5 शैक्षिक सम्पर्क – शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिये किसी एक मानक भाषा का सहारा लेना पड़ता है। मानक भाषा के प्रचार से बोलियों का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जाता है। शिक्षित व्यक्ति अपनी बोली में मानक भाषा का समावेश कर बोलीगत अनेक शब्दों का प्रयोग अमानक समझ कर छोड़ देता है।

1.3.3.9 संचार भाषा – अनेक भाषा–भाषियों, बोली क्षेत्रों में जितना अधिक सम्पर्क होता है, मानक भाषा के प्रचार में उतनी ही सुविधा मिलती है। रेल, मोटर, जहाज आदि यातायात के साधनों से नित्य प्रति लाखों आदमी एक–दूसरे के सहयात्री बनते हैं। वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं जहाँ व्यावसायिक, राजनीतिक तथा अन्य कार्यों के कारण कुछ दिन रूकते है। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य हो जाता है कि वह किसी सम्पर्क भाषा का व्यवहार करें, जिससे ज्यादातर स्थानों को समझा जा सके। हिन्दी में छपने वाले हज़ारों पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि के कार्यक्रमों से हिन्दी भाषा का व्यापक प्रचार–प्रसार होने से उसका

यह रूप भी विकसित होने लगा है।

1.3.4 शब्द भण्डार से अभिप्राय :–

किसी भाषा में प्रयुक्त शब्द समूह को ही शब्द भण्डार कहा जाता है। इसे ही शब्द संग्रह, शब्द सम्पत्ति, शब्दावली आदि पर्यायों से पुकारा जाता है। हिन्दी शब्द भण्डार के भेद हिन्दी शब्दों के विविध स्त्रोतों का वर्णन करते हुए आचार्य राम देव त्रिपाठी इनके पांच भेद स्वीकारते हैं –

1. संस्कृत – ये तत्सम कहे जाते हैं।
2. संस्कृत भव – इनका बहुप्रचलित नाम तद्भव है।
3. अर्ध–तत्सम – इनको संस्कृताभास कहा जाता है।
4. स्वकीय/देशी अथवा देशज
5. विदेशी/भाषान्तरगत/भाषाज्तरीय/आगत अथवा गृहीत

इन शब्दों का विवेचन प्रस्तुत है –

1.3.4.1 तत्सम शब्द – तत्सम में 'तत' का अर्थ है 'वह' अर्थात् संस्कृत और 'सम' का अर्थ है 'समान'। अर्थात् तत्सम उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान हो अथवा संस्कृत जैसे हो। उदाहरण के लिये हिन्दी में कृष्ण, गृह, कर्म, धर्म, हस्त आदि शब्द तत्सम हैं। वस्तुतः ये वे शब्द हैं जो संस्कृत से हिन्दी में बिना किसी ध्वनि परिवर्तन के आ गये। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने मूल उस की दृष्टि से तत्सम शब्दों के चार प्रकार बताये हैं :–

(क) प्राकृतों (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते हुए आने वाले शब्द जैसे – अचल, अचला, अघ, दम, कुसुम, काल, जन्तु, दम, दण्ड आदि। –संस्कृत से सीधे हिन्दी में आदि, भक्ति, रीति तथा आधुनिक कालों में लिये गये शब्द जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, कृष्ण, क्षेत्र, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मेघ, पुष्प, कुशल, मृग आदि। ऐसे शब्दों की संख्या प्रथम वर्ग से बड़ी है।

(ख) संस्कृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर हिन्दी में निर्मित तत्सम शब्द। जैसे – जलवायु, वायुयान, जहाज़, सम्पादकीय, प्रवक्ता, रेखाचित्र, प्रभाग, नगर पालिका, समाचार पत्र, पत्राचार आदि।

(ग) अन्य भाषाओं से आये तत्सम शब्द। इस वर्ग के तत्सम शब्दों की संख्या बहुत कम है। कुछ शब्द बंगाली तथा मराठी माध्यम से आये हैं। इनमें से कुछ शब्द इन भाषाओं में संस्कृत के आधार पर बने हैं –
मराठी – वाङ्मय, प्रगति
बंगाली – वक्तृता, उपन्यास, गल्प, संदेश, कविराज, अभिभावक, निर्भर, अभ्यर्थना, उर्मिल, धन्यवाद आदि।

(घ) हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं।

(क) संज्ञा तत्सम – संज्ञा शब्द प्राय दो प्रकार के होते हैं –

संस्कृति के प्रतिपादिक – जैसे राम, कृष्ण, पुस्तक, मित्र, फल, कुसुम, पुष्प मनुष्य, बालक, वृक्ष आदि अकारान्त शब्द हैं। इसी प्रकार इकारान्त में मुनि, हरि, कवि, कपि, यति, रवि, पति, रूचि, मति आदि। ईकारान्त में लक्ष्मी, सुधी आदि। उकारान्त में भानु, शत्रु, विष्णु, गुरू, धेनु, पशु, साधु, जन्तु, प्रभु, शिशु, आदि तथा अकारान्त में स्वयंभू, बधू, भू आदि शब्द।

(ख) संस्कृत के प्रथमा एक वचन – जैसे भ्राता, जमाता, सखा, पिता, दाता, माता, नेता, दुहिता, आत्मा, राजा, ब्रह्मा, युवा, स्वामी, तपस्वी, विद्वान्, भगवान्, धनवान् आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रतिपादिक रूप एवं प्रभमा बहुवचन रूप एक ही होता है, अतः इन्हें उपर्युक्त दो में से किसी में भी रखा जा सकता है। जैसे भार्या, नदी, विधा, बाला, निशा आदि।

सर्वनाम तत्सम – हिन्दी में सर्वनाम केवल दो ही प्रयुक्त हैं जो एकवचन के रूप में हैं – मम, तव आदि।

विशेषण तत्सम – हिन्दी में विशेषण केवल प्रतिपादिक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे – श्वेत, सुन्दर, चिरन्तन, पुरातन, तीव्र, नूतन आदि।

क्रिया तत्सम :– तत्सम शब्दों के आधार पर कुछ क्रियाएं भी बनी हैं – जैसे–स्वीकारना।

अव्यय तत्सम – हिन्दी में तत्सम अव्यय तीन प्रकार से प्रयुक्त होते हैं –

1. संस्कृत के समान – जैसे धिक्, सहसा, पृथक् आदि।

2. संस्कृत के कई रूपों में एक – ये अव्यय संधि के नियमों के कारण संस्कृत में कई रूपों में आते हैं किन्तु हिन्दी में प्रायः उनका एक ही रूप प्रयुक्त होता है – शनैः शनैरः शनैस्।

3. संस्कृत का मूल रूप – कुछ अव्यय संस्कृत में तो दूसरे रूपों में आते हैं किन्तु हिन्दी में उनके रूप को न लेकर मूल को स्वीकार किया जाता है। जैसे संस्कृत में 'नित्यम्' ही आयेगा जबकि हिन्दी में नित्य ही आयेगा, नित्यम् नहीं।

1.3.4.2 अर्ध तत्सम शब्द :– इसका प्रयोग ग्रियर्सन, चटर्जी आदि आधुनिककालीन भाषा शास्त्रियों ने उन शब्दों के लिये किया है जो एक प्रकार से तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं। अर्ध तत्सम वे शब्द हैं जो प्राकृत अपभ्रंश काल में या आधुनिक भाषा काल में सीधे संस्कृत से लिये गये हैं और जिनमें तद्भव जैसे परिवर्तन नहीं हुए हैं, अपितु कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। ये शब्द तद्भवों की तुलना में तत्सम से कुछ ही भिन्न हैं। उदाहरण के लिये 'कृष्ण' तत्सम शब्द हैं तो 'कान्हा', 'कन्हैया' तद्भव हैं तथा 'किशन' अर्ध तत्सम हैं। 'कान्हा' तथा 'किशुन' दोनों ही संस्कृत के कृष्ण से निकले हैं अतः दोनों ही तद्भव कहलाने के अधिकारी हैं, किन्तु 'कान्हा' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गयी थी, जबकि 'किशुन' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत बाद में शुरू हुई। इसको हम पूर्ववर्ती तद्भव तथा परवर्ती तद्भव भी कह सकते हैं।

तद्भव शब्द – तद्भव शब्द दो शब्दों के योग से बना है – तत्+भव। 'तत्' अर्थात संस्कृत से और 'भव' अर्थात उत्पन्न अथवा विकसित अर्थ से जुड़ा है। इस प्रकार तद्भव का अर्थ हुआ वे शब्द जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार संस्कृति भाषा प्रसूत शब्दों को तद्भव कहते हैं। ये शब्द प्राकृत से होकर हिन्दी में आये हैं। जैसे कृष्ण का तद्भव रूप कान्हा एवं कन्हैया है। इसी प्रकार कर्म का काम, धर्म का धाम, दुग्ध का दूध, नृत्य का नाच, द्योटक का घोड़ा, आदि तद्भव शब्द हैं। भरत ने तद्भव को 'विभ्रष्ट' कहा है। वाग्भट्ट न 'तज्ज' तथा हेम चन्द्र ने 'संस्कृत योनि' कहा है। इनको अपभ्रष्ट या अपभ्रंश भी कहा जाता है।

1.3.4.3 देशज शब्द :– कुछ विद्वान् इसे 'देशी मत' देशी प्रसिद्ध, देशजात, देसिका आदि कहते हैं। हेमचन्द्र, मार्कडेय आदि इसे देश्य या देशी कहते हैं। आचार्य चण्ड का कहना है कि

जो शब्द संस्कृत एवं प्राकृत न हो उनको देशी प्रसिद्ध शब्द कहा जाता है। हार्नेल ने संकेत दिया है कि ये वे तद्भव शब्द हो सकते हैं जो इतने विकृत हो गये हैं कि उनका तद्भव रूप पहचाना ही नहीं जा सकता। द्रविड़ प्रान्तों में विकसित प्रान्तीय शब्द एवं प्राथमिक प्राकृतों के तद्भव आदि शब्दों को, जो संस्कृत शब्दों से जोड़े नहीं जा सकते, देशज मानते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार जो शब्द किसी भाषा–क्षेत्र में बिना किसी आधार (तत्सम, तद्भव, गृहीत, शब्द तथा अनुकरण आदि) के विकसित हो गये हो, देशज शब्द कहलाते हैं। इनकी व्युत्पत्ति का कुछ सही प्रमाण नहीं है। अर्थात् ये अज्ञात व्युत्पत्ति के शब्द हैं। हिन्दी में ऐसे शब्द–कबड्डी, खादी, घूँट, गड़बड़, घपला, चंपत, झंझट, चूहा, टट्टू, टीस, ठेस, झगड़ा, ठेठ, तेदुंआ, थोथा, पेड़, पेठा, धब्बा, भर्ता आदि।

1.3.4.4 आगत शब्दावली :– दूसरी भाषाओं से आने वाले शब्दों को ही आगत शब्दावली कहते हैं। इन्हें विदेशी शब्द भी कहते हैं क्योंकि ये अन्य देशों की भाषाओं से आये हैं।

भारतीय आर्य भाषा में विदेशी शब्दों के लिये जाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। भारोपीय भाषा–भाषियों ने बहुत पहले सुमेरी भाषा से 'ग्वाउ' (स. गौ, अ. काउ, फा. गाव आदि) तथा रोध (स. लौह, रुधिर आदि) लिये थे। इसी प्रकार भारत ईरानियों ने यूनानी भाषा से उन शब्दों को लिया जो संस्कृत में शूक, भक्षिका, छाग, कफ, कूप, शलाका, तृण, हिरव्य रूप में मिलते हैं। भारत में आने पर भी समय समय पर अनेक विदेशी शब्द संस्कृत में आते रहे हैं। जैसे यूनानी से द्रम्य, द्रम, द्रम्भ (प्रा. में दम्भ, हिन्दी में – दाम, दमड़ी) आदि।

ईरानी शब्द – कुन्दक (कुन्दुर), निपिस्त (लिखित) मिहिर (मित्र)।

मिस्त्री शब्द :– मुद्रा (मुद्रिका भी इसी से है, हि. में मुंदरी/हिन्दी का मिश्री भी मूलत+ मिस्ती है जो संस्कृत में मिश्र के प्रभाव से मिश्री उच्चरित होता है।

इस प्रकार संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक भाषाओं से शब्द आये हैं। हिन्दी ने भी इसी परम्परा में पश्तो, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, डच, स्पेनी, रूसी तथा कई भारतीय भाषाओं से शब्द लिये हैं। इनका विवरण नीचे प्रस्तुत है –

पश्तो शब्द :– यह अफगानी भारोपीय परिवार की भाषा है तथा भारत–ईरानी वर्ग में आती है। हिन्दी में पठान, रोहिली शब्द पश्तो के हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी हिन्दी में पश्तो शब्दों की संख्या 100 से ऊपर मानते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख – अटेरन, डाकर, ढाँढा, अल्लम गल्लम, बकलोल, मटरगश्ती, गुण्डा, अचार, तड़ाक, असमस, जमालघोटा, चपड़कनाती, खचड़ा, अखरोट, चख चख, पटाखा, डंगर, डेरा, गटागट, गुटरगूँ, कुड़कुड़ाना, गड़बड़, लपड़ शपड़, लताड़, लुच्चा, हड़बड़ी, हमजोली, अटकल, भड़ास इत्यादि।

तुर्की शब्द :– तुर्किस्तान, पूवी प्रदेश के साथ भारत का प्राचीन सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध धर्म, व्यापार और राजनीति के स्तर पर था। हिन्दी में कुल तुर्की शब्दों की संख्या लगभग 125 तक है। कुछ प्रमुख शब्द– उर्दू, बहादूर, अजबक, तुर्क, आका, कलगी, चाकू, कैंची, काबू, कुली, कोर्मा, खां, खातून, खानुम, गलीचा, चकमक, चिक, तमगा, तमंचा, तोप, तोपची, दारोगा, बख्शी, बावर्ची, बेग, बेगम, चम्मच, लाश, सौगात, बीबी, चेचक, सुराग, बारूद, नान खताई, गनीमत, रब्बा, मुगल, ठाकुर, आदि तुर्की शब्द है।

फारसी (अरबी) शब्द :– भारत–ईरान के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। ईरानी और भारतीय आर्य

भाषाएं एक ही मूल भारत–ईरानी से विकसित हैं। यही कारण है कि कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ अनेकानेक शब्द संस्कृत और फारसी दोनों से मिलते हैं। जैसे भू–अबू नक्षत्र–अख्तर, अंगुष्ठ–अगुष्ट, अश्व–अस्प, दन्त–दण्द, दश–दह, मास–माह, नम्र–नर्म, छाया–साया, शोक–सोग, आपत्ति–आफ़त, जार–यार आदि।

हिन्दी में प्रयुक्त फारसी शब्दों की संख्या लगभग 3500 तथा अरबी शब्दों की संख्या 2500 के आस पास है। ये शब्द विषय की दृष्टि से कई प्रकार के हैं। जैसे – **धर्म सम्बन्धी –**मज़हब, रोज़ा, कुरान, खुदा, हज, वली, नबी, शिया, पैगम्बर।

शासन सम्बन्धी शब्द :– चपरासी, सदर आला, तहसीलदार, वकील, मुंसिफ, दीवानी, मुंशी, खजांची, हाकिम, इजलास, अहलकार, सिपाही, अदालत।

सेना सम्बन्धी शब्द :– हौलदार, फौज़, रिसालदार, हमला, गोंलदाज, संगीन, कमान, तीर आदि।

पोशाक सम्बन्धी शब्द :– मोज़ा, पाजामा, कमीज़, जुराब, दस्ताना, साफ़ा, शलवार आदि।

स्थान सम्बन्धी शब्द :– परगना, मुहल्ला, कूचा, देहात, शहर, तहसील, जिला, कस्बा आदि।

पत्र व्यवहार सम्बन्धी शब्द :– हरकारा, ख़त, लिफ़ाफ़ा, पता आदि।

अन्न, फल, मेवा, सब्जी सम्बन्धी शब्द :– गंदुम, अंजीर, बादाम, सेब, खूंबानी, अनार, अंगूर, आलूचा, नाशपाती, मुनक्का, किशमिश, शहतूत, पिस्ता, शरीफ़ा, तरकारी, पुदीना, शलगम, चुकन्दर, खरबूज़, तरबूज़, कद्दू, कुल्फा आदि।

मिठाई–नमकीन सम्बन्धी शब्द :– बरफ़ी, हलवा, जलेबी, शकरपारा, नमकपारा, कलाकन्द, बालुशाही, गुलाब, समोसा आदि।

शृंगार सम्बन्धी शब्द :– इत्र, सुर्मा, साबुन, हजामत, आइना, शीशा, हिना आदि।

फर्नीचर सम्बन्धी शब्द :– कुर्सी, तख्त आदि।

व्यवसाइयों के नाम :– बजाज़, ज़ीनसाज़, बाग़बान, दर्ज़ी, रफूगर, सर्राफ़, रईस, बेलदार, बावर्ची, दलाल, हलवाई, दफ़्तरी, जुलाहा आदि।

बीमारी सम्बन्धी शब्द :– बवासीर, हकीम, नब्ज़, बुखार, बदहज़्मी, जुकाम, नज़ला, लकवा, हैज़ा, नासूर, दवा, जुलाब, मरीज़, बीमार आदि।

विशेषण शब्द :– बेइमान, इमानदार, बदनाम, बारीक़, बेहया, दिलेर, ज़्यादा, बेकार, सख्त, नरम, भुस्तैद, सादा, खुश, परेशान, ज़िन्दा, गन्दा, चालाक आदि।

सर्वनाम शब्द :– खुद, फ़लाँ आदि।

क्रिया विशेषण शब्द :– अक्सर, आखिर, बेशक, ज़रूर, शायद, हरगिज़, हमेशा, ज़बरदस्ती, जल्द, कतई, खामखां आदि।

अव्यय बोधक शब्द :– अगर, व, ब्लकि, कि, वर्ना, लेकिन आदि।

क्रिया शब्द :– खरचना, तराशना, वसूलना, शर्माना, कुबूलना, ख़रीदना, फ़रमाना आदि।

फारसी के माध्यम से हिन्दी में आने वाले अरबी शब्द जैसे – **शासन :–** अदालत, अमीन, बग़ावत, बरी, हिरासत, हाकिम, दफ़ा, मुकदमा, फैसला, इंसाफ, मुन्सिफ़, वज़ीर आदि।

धर्म सम्बन्धी शब्द :– हज, हलाल, ईद, हराम, जिन्न, मज़हब, मोहर्रम, औलिया, दुआ, सलाम,

शैतान आदि।

चिकित्सा सम्बन्धी शब्द :– बलगम, बवासीर, दिक़, हकीम, अ़र्क, जुलाब, लकवा, मवाद, मर्ज़, मरीज़, नब्ज़, नुस्खा, इलाज आदि।

शिक्षा सम्बन्धी शब्द :– किताब, इम्तिहान, कलम, कागज़ आदि।

पुर्तगाली शब्द :– पुर्तगाली शब्द हिन्दी में बंगली आदि भाषाओं के माध्यम से आये हैं। हिन्दी में इनकी संख्या 100 से कम ही है। कुछ शब्द जैसे–अलमारी, अन्नानास, आत, अलकतरा, आया, आलपिन, इस्त्री, इस्पात, कनस्तर, कप्तान, कमरा, कर्नल, काज, काफ़ी, काजू, कोको, क्रूस, गमला, गिरजा, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, जँगला, तम्बाकू, पीपा, फर्मा, बम्बा, बाल्टी, बिस्कुट, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, यीशू, लबादा, संतरा, साया, पगार आदि।

अंग्रेजी के शब्द :– 18वीं सदी के अंतिम चरण में अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द बोलचाल के माध्यम से हिन्दी में आये जैसे, गैजेट, नोटिस, कम्पनी, कौंसल, लाइसंस आदि। किन्तु जब अंग्रेजी शिक्षा का प्रर्याप्त प्रचार होने लगा तो पुस्तकों में भी ये शब्द आने लगे। आरम्भ में इन्हें हिन्दी उच्चारण के अनुकूल सरलीकृत किया गया जैसे लार्ड से लाट्, आर्डरली से अर्दली, ऑगस्ट से अगस्त, ट्रेज़री से तिजोरी, ब्रश से बुकश आदि। अंग्रेजी उच्चारण एवं वर्तनी का अनुकरण करते हुए इन शब्दों का सरलीकृत रूप लुप्त हो गया तो ये शब्द हिन्दी में परिनिष्ठित ही मान लिये गये जैसे – कल्ट्टर, आफ़िस, कालेज, वार्निश, पंचर, इस्कूल, इस्टेशन, पैटमैन, पलस्तर के स्थान पर कलेक्टर, ऑफ़िस, कॉलिज, वार्निश, पंक्चर, स्कूल, स्टेशन, प्वाइन्टसमैन, प्लास्टर आदि अधिक परिनिष्ठित माने जाते हैं।

हिन्दी में इस समय अंग्रेजी शब्दों की संख्या तीन हजार से ऊपर है। इनके कुछ प्रमुख वर्ग निम्नलिखित हैं –

धातुओं के नाम – जर्मन, सिल्वर, निकल, टिन, प्लेटिनम आदि।

यन्त्रों के नाम – टाइपराइटर, इंजन, मोटर, कैमरा, टेलीफोन, टेलीविज़न, मीटर, मशीन, रेडियो आदि।

सवारियों के नाम – ट्रक, बस, कार, टेम्पो, टेक्सी, साइकल, स्कूटर, ट्रेन, लारी आदि।

चिकित्सा सम्बन्धी शब्द :– ऑपरेशन, अस्पताल, टीबी, प्लेग, कॉलरा, टाइफाइड, थर्मामीटर, टिक्चर आदि।

शिक्षा सम्बन्धी शब्द :– नर्सरी, यूनीवर्सिटी, मास्टर, लैक्चर, रिसर्च, स्कॉलर, रीडर, प्रोफेसर, प्रिन्सीपल आदि।

पोशाक सम्बन्धी शब्द :– पेंट, कोट, ओवरकोट, टीशर्ट, फ्रॉक, कॉलर, नाइलन, टेरीलीन, गाउन, हैंडलूम आदि।

शासन तथा न्याय सम्बन्धी शब्द :– इन्सपेक्टर, हाइकोर्ट, डिप्टी कलेक्टर, कमिश्नर, जज, एडवोकेट, बैरिस्टर आदि।

महीनो के नाम :– जनवरी, फरवरी आदि।

खेल सम्बन्धी शब्द :– टीम, हॉकी, फुटबॉल, मैच, बैडमिन्टन, गोल, गोलकीपर आदि।

पोस्ट ऑफिस सम्बन्धी शब्द :– पोस्टमैन, पोस्टमास्टर, मनीआर्डर, रजिस्ट्री, बुकपोस्ट, इन्श्योर्ड आदि।

कला सम्बन्धी शब्द :– आर्ट, ब्रश, स्कैच, सीनरी, फोटो, फिल्म, नेगेटिव आदि।

खान पान सम्बन्धी शब्द :– आइसक्रीम, लेमन, सोडा, डबलरोटी, बिस्कुट, पेस्ट्री, टोस्ट, आमलेट, कटलेट, हॉट डॉग, बियर, सूप इत्यादि।

शृंगार सम्बन्धी शब्द :– पाउडर, नेल पालिश, लिपस्टिक, सेंट, रूज़, हेयर पिन आदि।

भवन विषयक शब्द :– गैलरी, हॉल, गौराज, फ्लैट, क्वार्टर आदि।

विशेषण शब्द :– सीनीयर, जूनियर, प्योर, फाइन, आदि।

संख्याबोधक शब्द :– फर्स्ट, थर्ड, सैंचुरी आदि।

अव्यय शब्द :– हर्रे, हुर्रा, डेली, वीकली आदि।

क्रिया शब्द :– फिल्माना, किक लगाना, फेल करना, हिट मारना, कटिंग करना, शेव करना आदि।

फ्रांसीसी शब्द :– कार्तूस, कूपन, रूज, कप, केबल, बेसिन, लैम्प, टेबुल, मार्शल, मशीन, पिकनिक आदि।

डच शब्द :– तुरूप (ट्रंप, ताश में) इस्क्रूप (स्क्रयू) आदि।

स्पेनी शब्द :– अंग्रेजी के माध्यम से आने वाले स्पेनी शब्द जैसे पीउन, सिगार, सिगरेट आदि शब्द।

अंग्रेजी के माध्यम से **रूसी शब्द** – रूबल, ज़ार, बोदका। **जर्मन शब्द** :– लॉटरी, गजट, रॉकेट, पिआनो, वायलिन, ओपेरा। **जापानी शब्द :–** रिक्शा, हाराकिरी, तथा **अफ्रीकी शब्द :–** जेंब्रा, चिम्पैंजी आदि हिन्दी में आये हैं।

अनेक भारतीय भाषाओं के शब्द भी हिन्दी में आये हैं, जिससे हिन्दी का शब्द भण्डार समृद्ध हुआ है। **मराठी** – वाङ्मय, चालू, बाड़ा। **गुजराती** – गरवा, हड़ताल, श्रीखण्ड। **बंगाली** – कविराज, उपन्यास, गल्प, नितांत, रसगुल्ला, चमचम। **उड़िया** – अटका। **पंजाबी** – सिक्ख, छोले, खालसा, ठाठा, भंगड़ा, कुड़माई आदि।

1.3.4.5स्वयं जांच अभ्यास

1. बोली किसे कहते हैं?
   .....
   .....
   .....
2. तत्सम शब्द से आपका क्या तात्पर्य है?
   .....
   .....
   .....

1.3.5 सारांश :–

इस पाठ में भाषा के विविध रूपों का संक्षिप्त परिचय देने हुए उनका विवेचन किया गया है। भाषा के इन रूपों के आधारों को भी वर्णित किया गया है। यह आधार ऐतिहासिक, भौगोलिक,

प्रायोगिक और निर्माण रूप पर आधारित हैं। इन्ही के आधार पर मूलभाषा, व्यक्तिबोली, उप बोली, बोलचाल की भाषा, रचनात्मक भाषा, राष्ट्र भाषा, राज भाषा, सम्पर्क भाषा तथा संचार भाषा के रूप विकसित हुए जिनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया।

यह सत्य है कि हिन्दी शब्द भंडार संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश से होते हुए विकसित हुआ है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य का शब्द भण्डार बहुत कुछ अपभ्रंश जैसा है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में शब्द–भंडार के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए जैसे भक्ति प्रचार के कारण लोगों का ध्यान संस्कृत के धार्मिक साहित्य की ओर गया अतः तत्सम शब्दों में वृद्धि हुई। मुगल शासन के कारण फारसी, अरबी, तुर्की शब्दों की संख्या में वृद्धि हुई। यूरोपीय लोगों से सम्पर्क के कारण पुर्तगाली, अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द हिन्दी में आये। इसी प्रकार आधुनिक काल में छायावाद की तत्सम–प्रवृत्ति के बाद प्रगतिवाद ने हमारे शब्द भण्डार हो तत्सम से बोलचाल की ओर मोड़ दिया। इसके अतिरिक्त विभिन्न ज्ञानानुशासनों के विकास के कारण पारिभाषिक शब्दावालियों का निर्माण किया जाने लगा। इस काल में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तद्भव और विदेशी शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। इस पाठ में हिन्दी शब्द भण्डार के विभिन्न स्त्रोतों का विवेचन करते हुए तत्सम, अर्ध तत्सम, तद्भव, देशज और आगत शब्दावलियों का विवेचन किया गया है।

1.3.6 प्रश्नावली :–

1. भाषा के विभिन्न रूप–आधार कौन कौन से हैं ?
2. व्यक्ति बोली और उपबोली में अन्तर और अन्तर–सम्बन्ध क्या है ?
3. राष्ट्र भाषा से आपका क्या अभिप्राय है ?
4. राज भाषा और राष्ट्र भाषा के दो अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
5. सम्पर्क भाषा किसको कहते हैं ?
6. धार्मिक सम्पर्क और साहित्यिक सम्पर्क से आपका क्या अभिप्राय है ?
7. शब्द–भण्डार से क्या अभिप्राय है ?
8. शब्द भण्डार के विविध स्त्रोतों का वर्णन करें ?
9. तत्सम और तद्भव के अन्तर को स्पष्ट करें ?
10. देशज शब्दों से क्या अभिप्राय है ?
11. हिन्दी में व्यवहृत 20 अग्रेंजी शब्दों को लिखें।

1.3.7 सहायक पुस्तकें

1. हिन्दी भाषा का इतिहास – भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा उद्भव और विकास – उदयनारायण तिवारी

पाठ संख्या : **1.4** लेखिका : डॉ॰ रजिन्द्र कौर अनेजा

हिन्दी भाषा का मानकीकरण

1.4.0 उद्देश्य
1.4.1 प्रस्तावना
1.4.2 मानकीकरण से अभिप्राय
1.4.3 मानकीकरण के अभिलक्षण
1.4.4 मानकीकरण के उपादान
1.4.5 हिन्दी भाषा के मानकीकरण
1.4.6 हिन्दी भाषा का मानकीकरण : विविध स्तर
1.4.6.1 उच्चारण स्तर
1.4.6.2 रूप–रचना स्तर
1.4.6.3 शब्द–अर्थ स्तर
1.4.6.4 वर्तनी स्तर
1.4.7 मानकीकरण की प्रक्रिया
1.4.7.1 स्वयं जांच अभ्यास
1.4.8 सारांश
1.4.9 प्रश्नावली
1.4.10 सहायक पुस्तकें

1.4.0 उद्देश्य :

इस पाठ के अन्तर्गत हिन्दी भाषा के मानकीकरण पर विस्तृत जानकारी दी जायेगी। मानकी करण से अभिप्राय, उसके अभिलक्षण, उपादान, विभिन्न स्तरों पर मानकीकरण जैसे उच्चारण स्तर, रूप रचना स्तर, शब्द–अर्थ स्तर, वर्तनी स्तर तथा मानकीकरण की विभिन्न प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन किया जायेगा।

1.4.1 प्रस्तावना :

हिन्दी सम्पूर्ण भारत की घोषित राजभाषा है। शिक्षा का माध्यम, राजकाज आदि के अतिरिक्त राज्य के स्तर पर भी अपनी भाषा के रूप में भारत इसी का प्रयोग कर रहा है। ऐसी स्थिति में इसका सर्वस्वीकृत मानक रूप अनिवार्यतः आवश्यक है। यूँ तो कहा जाता है कि भाषा की मानकता एक कल्पना है। भाषा बहुत ही लचीली होती है। लाख कोशिश करके उसका मानक रूप निश्चित कर लिया जाये, किन्तु उसका प्रयोक्ता जाने–अनजाने नित नये प्रयोग, नई गलतियाँ करता रहता है और इसी कारण भाषा समय के साथ बदलती, विकसित होते और आगे बढ़ती रहती है। किन्तु फिर भी भाषा सर्वस्वीकृत नहीं तो बहुस्वीकृत मानक रूप अवश्य होता है और उस भाषा के शिक्षित प्रयोक्ता उससे थोड़ा–बहुत हटने के बावजूद भी उसी के इर्द गिर्द घूमते रहते हैं।

1.4.2 मानकीकरण से अभिप्राय :–

मानकीकरण शब्द अंग्रेजी के स्टेन्डरडाइजेशन (Standardization) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। मानकीकरण में विविध स्तरों पर पायी जाने वाली विषमरूपता या अनेकरूपता को दूर कर एकरूपता या समरूपता लाने का प्रयत्न किया जाता है। वास्तव में मानकीकरण एक प्रक्रिया है जो प्रयत्नपूर्वक की जाती है। मानकीकरण को एक प्रकार से अमूर्त आदर्श कहा जाता है क्योंकि भाषा का कोई भी वक्ता मानक भाषा के व्यवहार का दावा नहीं कर सकता। यह सच है कि वक्ता के मानस में एक आदर्श रहता है। यह आदर्श उच्चारण, शब्द रूपों एवं संरचना का होता है। वास्तव में आदर्श रूप की एक अभूर्त संकल्पना रहती है और इस आदर्श तक पहुँचने की उसकी इच्छा भी रहती है। इसीलिये यह संचेतन प्रक्रिया है।

भाषा के स्वनिम, रूपिम, वाक्य आदि प्रत्येक स्तर पर विविध रूपता आ जाती है। एक ध्वनि के एक से अधिक उच्चारण होने लगते हैं। एक ध्वनि के लिये एकाधिक लिपि चिह्न भी चल पड़ते हैं, वाक्य के स्तर पर भी विविध प्रयोग होने लग जाते हैं जिससे भाषा के प्रत्येक स्तर पर विविध रूपता आ जाती है। जैसे हिन्दी में 'ओ' के अनेक उच्चारण हैं। बिहार का आदमी हिन्दी 'ओ' का उच्चारण 'अउ' करता है। यह क्षेत्रीय प्रभाव के कारण होता है। मानकीकरण की प्रक्रिया में इस प्रकार के भेदीकरण स्वीकार नहीं किये जाते ब्लकि समरूपता लाने का प्रयास किया जाता है।

क्षेत्रीय बोलियों के सम्पर्क के कारण एक वस्तु के लिये अनेक शब्द रूप भाषा में आ जाते हैं। इन शब्दों के साथ बोलियों में प्रचलित लिंग भी आते हैं। परिणामता एक शब्द दो लिंगों में सुनाई पड़ता है –

'दही खट्टा है।'
'दही खट्टी है।'

इसी प्रकार एक प्रक्रिया के दो रूप प्रचलित हो जाते हैं। जैसे –

1. मैने नहीं करा ('करा' अमानक है)
   मैने नहीं किया (मानक)
2. आप वहाँ मत जाया करिये ('करिये' अमानक)
   आप वहाँ मत जाया कीजिए (मानक)

मानकीकरण के अन्तर्गत इस प्रकार की विविधरूपता स्वीकार नहीं की जाती बल्कि एक समरूप उच्चारण निर्धारित किया जाता है।

1.4.3 मानकीकरण के अभिलक्षण :–

भाषा में विषमरूपता समाप्त कर समरूपता लाने का प्रयास ही मानकीकरण कहलाता है। मानकीकरण के निम्नलिखित अभिलक्षण हैं –

1.4.3.1 समरूपता :– समरूपता मानकीकरण का प्रथम अभिलक्षण है। इसके अन्तर्गत ध्वनियों के विषम उच्चारणों के स्थान पर समरूप उच्चारणों का निर्धारण कर उन्हें मानक माना जाता है। एक ध्वनि को प्रकट करने के लिये प्रचलित विविध लिपि प्रतीकों में से एक को मान्यता दी जाती है और सर्व समान रूप से उस एक मान्य रूप के प्रयोग पर जोर दिया जाता है। शब्दों की वर्तनी में भी समरूपता का विधान किया जाता है।

1.4.3.2 भाषा में स्थिरता :– मानकीकरण से भाषा में स्थिरता आती है। रूप निश्चित होते हैं, प्रयोगों का निर्धारण होता है। इस स्थिरता में लचीलापन होता है। मानकीकरण से स्थिर हुई भाषा भी नये ज्ञान–विज्ञान और जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नये प्रयोगों को स्वीकार करने के लिये तैयार रहती है।

1.4.3.3 अनुकूलित सर्वग्राह्यता :– सर्वग्राह्यता समाज की स्वीकृति है और बिना सामाजिक स्वीकृति के मानकीकरण का कोई अर्थ नहीं। अनुकूलन की यह प्रक्रिया समुदाय द्वारा स्वीकृत होनी चाहिये। वक्ता समाज यह स्वीकार करे कि अमुक रूप मानक है और इसी का प्रयोग करना चाहिये। यह भी निश्चित करना पड़ेगा कि दूसरी भाषाओं से आगत शब्द किस प्रक्रिया से अनुकूलित होकर ग्राह्य होंगे। हिन्दी में शॉपिग (Shopping) शब्द चल पड़ा है। शॉपिंग संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होकर 'करना' क्रिया के साथ 'शॉपिंग करना' बनता है। यह अनुकूलन की ही प्रक्रिया हैं।

1.4.3.4 ऐतिहासिक परम्परा का अनुरक्षण :– प्रत्येक भाषा की अपनी ऐतिहासिक परम्परा होती है – जैसे – ध्वनियों के उच्चारण की परम्परा, शब्द–निर्माण विधि की परम्परा, वाक्य–विन्यास की परम्परा। इन परम्पराओं में ही भाषा की पहचान सुरक्षित रहती है। मानकीकरण में ऐसे अनुकूलन ने हो तो भाषा की प्रकृति ही समाप्त हो जाये।

1.4.3.5 जीवंतता :– मानकीकरण का यह महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। कोई भी भाषा तभी जीवन्त कही जा सकती है जब वह अपने युग की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हो, जीवन की क्रिया–प्रक्रियाओं को अभिव्यक्त करने में सशक्त हो। जीवन्त रहने के लिये भाषा नवीन रूप धारण करती है तथा नये प्रयोग स्वीकार करती है।

1.4.3.6 क्षेत्र निरपेक्षता :– मानक भाषा का विकास क्षेत्र–विशेष में प्रचालित बोली के आधार पर होता है किन्तु विकसित होने के बाद भाषा का मानक रूप क्षेत्र–निरपेक्ष हो जाता है। खड़ी बोली का विकास मेरठ की बोली से हुआ पर उस पर आधारित मानक हिन्दी आज मेरठ क्षेत्र में ही सीमित नहीं है, अब वह क्षेत्र निरपेक्ष है। मानकीकृत भाषा में औपचारिकता होती है तथा क्षेत्रीय रूप में अनौपचारिकता बनी रहती है। अतः क्षेत्र निरपेक्षता मानक भाषा का एक और विशिष्ट अभिलक्षण है।

1.4.3.7 विकल्पन :– मानक भाषा में विकल्पन स्वीकृत होते हैं। यह विकल्पन साभिप्राय होते हैं और प्रयोजनों से जुड़े होते हैं। 'दर्शन लाभ करने जाना' और 'मिलने जाना' विकल्पन ही हैं। दोनों मानक भी हैं। पर दोनों का अभिप्राय तथा प्रयोजन अलग अलग है। इस प्रकार के विकल्पन मानक भाषा में स्वीकृत होते हैं।

1.4.4 मानकीकरण के उपादान :–

मानकीकरण के निम्नलिखित उपादान हैं –

1.4.4.1 व्याकरण :– अमानक स्थिति से मानकता तक पहुँचने के लिये व्याकरण की आवश्यकता होती है। व्याकरण ही अनुकूलन आदि नियमों का निर्धारण करता है। इसीलिये मानकीकरण के लिये व्याकरण पहला महत्त्वपूर्ण उपादान माना गया है।

1.4.4.2 कोश :– कोश इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उपादान है। कोश से शब्द के मुख्यार्थ का बोध होता है तथा गौण अर्थों का पता चलता है। व्याकरण और कोश के बिना किसी भाषा की

मानकता पर विचार करना संभव नहीं है।

1.4.4.3 साहित्य :– मानक भाषा के प्रसार के लिये साहित्य एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यहाँ साहित्य का तात्पर्य सभी ज्ञान क्षेत्रों से सम्बद्ध सामग्री हैं। पढ़े–लिखे लोगों तक भाषा का मानक रूप इसी साहित्य के माध्यम से पहुँचता है।

1.4.5 हिन्दी भाषा के मानकीकरण :–

मानकीकरण की प्रक्रिया भाषा में परिनिष्ठित प्रयोगों का निश्चय करती है तथा प्रतिमान निर्धारित करती है। इन प्रतिमानों के आधार पर निश्चित किया जाता है कि कौन से प्रयोग मान्य हैं और कौन से मान्य नहीं हैं। मान्यता के आधार पर ही भाषा का रूप प्रतिष्ठित होता है, वह सभी के लिये समझ में आने के योग्य होती है। भाषा का एक सुनिश्चित प्रयोजन है। मानकीकरण से भाषा के प्रयोजन को सिद्ध करने में सुविधा होती है।

हिन्दी भाषा के मानकीकरण से अभिप्राय है हिन्दी भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप रचना, वाक्य–रचना शब्द और शब्द रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, इस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज हैं।

1.4.6 हिन्दी भाषा का मानकीकरण : विविध स्तर :–

हिन्दी भाषा के मानकीकरण का विस्तृत विवेचन विविध स्तरों के आधार पर किया जा सकता है। ये स्तर निम्नलिखित हैं :–

1.4.6.1 उच्चारण स्तर :– उच्चारण स्तर पर ध्वनियों के आधार पर स्वर और व्यंजन ध्वनियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

(क) स्वर :– 'ऐ' के मुख्य रूप से तीन उच्चारण मिलते हैं –

ए, अइ, आई

राजस्थानी हिन्दी में 'ऐ' का उच्चारण 'ए' रूप में होता है –

पैसा – पेसा

पैर – पेर

बिहारी हिन्दी में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' के रूप में होता है :–

पैसा – पइसा

वैसा – वइसा

सामान्य मानक उच्चारण 'ऐ' के रूप में पैसा, वैसा, कैसा आदि है।

'औ' के विभिन्न उच्चारण 'ओ', 'अड' आदि मिलते हैं – राजस्थानी हिन्दी में 'औ' का उच्चारण 'ओ' की तरह होता हैं –

और – ओर

औरत – ओरत

बिहारी हिन्दी में इसका उच्चारण 'अउ; की तरह होता है –

और – अउर

औरत – अउरत

(ख) व्यंजन :– बोलियों तथा उपभाषाओं के व्याधात के कारण ध्वनियों के उच्चारण में

विषमरूपता उत्पन्न हो जाती है। अनेक क्षेत्रों में 'श' को 'स' (शहर–सहर, भाषा–भासा), क्ष को छ (क्षमा–छमा, क्षेत्र–छेत्र) या च्छ (शिक्षा–सिच्छा, भिक्षा–भिच्छ) य को ज (यज्ञ–जज्ञ) तथा व को ब (विद्यार्थी–बिद्यार्थी) बोलने और लिखने की गलती लोग करते हैं। हिन्दी में क्रमशः श, क्ष, य, व, आदि ही बोला और लिखा जाना चाहिये। इनके स्थान पर स, छ, ज और ब आदि नहीं। हिन्दी के मानक रूप के निर्धारण में ध्वनि के स्तर पर बलाघात, अनुतान, संहिता आदि अन्य दृष्टियों में कोई ख़ास समस्या नहीं है।

1.4.6.2 रूप–रचना स्तर :– हिन्दी रूप रचना में अमानक तत्त्व बहुत ही कम हैं। व्याकरणिक भागों की दृष्टि से संज्ञा में अमानक प्रयोग न के बराबर हैं। पंजाबी के प्रभाव से मामे के (मामा के घर) लाले से (लाला से) जैसे कुछ प्रयोग कभी–कभी सुनाई पड़ जाते हैं किन्तु उनके अमानक होने के विषय में कोई विवाद नहीं है।

सर्वनाम के रूपों में मेरे, तेरे (मेरे को, तेरे से) जैसे अमानक प्रयोगों से बचना चाहिये।

क्रिया रूपों में 'करिये' के स्थान पर 'कीजिए', 'करा' के स्थान पर 'किया', 'करियेगा' के स्थान पर 'कीजिएगा' आदि मानक रूपों का प्रयोग करना चाहिये।

वाक्य रचना में क्रम तथा अन्वय की दृष्टि से अमानक प्रयोग बहुत कम हैं क्योंकि व्याकरणिक स्तर पर हिन्दी का मानक रूप एक सीमा तक विकसित हो चुका है।

हिन्दी भाषा में लिंग की समस्या भी थोड़ी जटिल है, किन्तु वास्तविक प्रयोग में 20–25 से अधिक ऐसे शब्द नहीं हैं जिनके लिंग को लेकर विवाद हो। जैसे दही, तकिया, तौलिया, कोट, रूमाल, खेल, कलम, पैंट आदि। इसे हम चिन्ता का कारण नहीं मानते।

1.4.6.3 शब्द–अर्थ स्तर :– हिन्दी के मानक स्वरूप को निर्धारित करने में सबसे बड़ी समस्या शब्द और अर्थ की है। जैसे –

चिट्ठी गेरी (मेरठ आदि)
चिट्ठी छोड़ी (पूर्व में)
चिट्ठी डाली (पश्चिम में)

इसी प्रकार 'कीड़ी' सामान्य शब्द है। हरियाणा में इसको 'चींटी' कहते हैं। इसी प्रकार दिल्ली में बोली जाने वाली 'तोरी' इलाहाबाद–बनारस में 'नेनुवाँ', बलिया में 'घेवड़ा' बोली जाती है।

पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी में बहुत अव्यवस्था है। एक ही शब्द के लिये दो–दो, तीन–तीन शब्दों का प्रचलन उचित नहीं ठहराया जा सकता। पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने की दिशा में हिन्दी को सबसे अधिक प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

1.4.6.4 वर्तनी स्तर :– हिन्दी भाषा में अनेक ध्वनियों के लिये दो लिपि चिह्न चलते हैं। मानकीकरण की प्रक्रिया में इनमें से एक रूप को स्वीकार किया गया है। हिन्दी में ऐसे वर्ण निम्नलिखित हैं :–

मानक	अमानक	मानक	अमानक
अ	प्र	ऊ	ऊ
आ	प्रा	ए	अे
इ	अि	ऐ	अै
ई	अी	छ	द्द

उ	अु	ल	क्त
झ	भ	अं, अः	प्रं, प्रः
ण	राा		
घ	ध		

हिन्दी में संयुक्त वर्ण लिखने के ढंग का मानकीकरण किया गया है। जैसे – क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, अनुनासिकता व्यक्त करने की मानक विधि अपनायी गयी है। अनुनासिकता स्वर का गुण है। लिपि में अनुनासिकता दो प्रकार से प्रकट होती है – चंद्र बिन्दु (ँ) तथा बिन्दु (ं) के द्वारा। हिन्दी की मानक वर्णमाला इस प्रकार है –

मानक हिन्दी वर्णमाला :–

स्वर :– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ ए, ऐ, ओ, औ।

मात्राएं :– ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ।

अनुस्वार :– (अं)

विसर्ग :– (अः)

व्यंजन :–

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण ङ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह

संयुक्त व्यंजन :– क्ष त्र ज्ञ श्र

हल् चिन्ह :– (ड्)

गृहीत स्वर :– ऑ, ख़, ज़, फ़

देवनागरी अंक

१ २ ३ **4** ५
६ ७ ८ ९ १०

भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप

1 2 3 4 5
6 7 8 9 10

हिन्दी वर्तनी की सबसे बड़ी समस्या अनेकरूपता को लेकर है जैसे – य, व के स्तर पर –

जाए	जाये	जावे
हलुआ	हलवा	हलवा
रोए	रोये	रोवे

विसर्ग तथा हल् चिह्न के स्तर पर –

जगत्	जगत

महान्	महान

द्वित्व व्यंजन के स्तर पर –

कर्ता	कर्त्ता
वर्मा	वर्म्मा

अनुस्वार के स्तर पर –

सांस	साँस
पूंछ	पूँछ

अन्य स्तर –

यमुना	जमुना
राज्य	राज
त्योहार	त्यौहार
राजनैतिक	राजनीतिक
बहिन	बहन
सिर	सर
रखा	रक्खा
अक्लमंद	अकलमंद
इम्तिहान	इम्तहान
इजाज़त	इजाजत
अप्रैल	एप्रिल

हिन्दी वर्तनी में ऐसे अमानक प्रयोग अज्ञान के कारण मिलते हैं। जैसे सौन्दर्यता, माधुर्यता अमानक है। सौन्दर्य, माधुर्य ही मानक हैं। सुन्दरता और मधुरता भी मानक हैं।

उपर्युक्त विवेचन में हिन्दी वर्तनी के संदर्भ में मानक प्रयोगों को स्पष्ट किया गया है। इनका हमें भली भांति ध्यान रखना चाहिये तथा भाषा के मानक प्रयोग ही किये जाने चाहिये ताकि भाषा में समरूपता बनी रहे। मानक प्रयोगों से भाषा व्यवस्थित रहती है तथा सभी के लिये बोधगम्य भी होती है।

1.4.7 मानकीकरण की प्रक्रिया :–

हिन्दी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया चार चरणों में पूरी होती है –

1. चयन :– किसी भाषा के विविध क्षेत्रीय या सामाजिक रूपों में किसी एक का सर्वप्रथम मानक भाषा के रूप में चयन होता है। इस चयन का आधार उस रूप का देश को राजधानी के समीप बोला जाना, धर्म, राजनीति एवं साहित्य आदि के कारण उसका महत्त्व होता है।

2. प्रसार :– मानक रूप के निर्धारित होने के बाद वह अपने क्षेत्र से बाहर प्रसार पाने लग जाता है।

3. प्रयोग :– भाषा का मानक रूप धीरे–धीरे उस भाषा की सभी बोलियों, उपबोलियों एवं सामाजिक बोलियों पर छा जाता है और साहित्य, शिक्षा, प्रशासन, समाचार पत्र आदि में प्रयुक्त होने लग जाता हैं। इस प्रकार वह विशेष क्षेत्र का होने पर भी सर्वक्षेत्रीय हो जाता है।

4. स्वीकृति :– इस प्रकार किसी सीमित क्षेत्र, सीमित प्रयोग और सीमित वर्ग की भाषा या

बोली को भाषा–विशेष के सभी लोगों द्वारा स्वीकृति मिल जाती है।

इस प्रकार चयन, प्रसार, प्रयोग तथा स्वीकृति के द्वारा कोई भी भाषा या बोली मानक भाषा बन जाती है।

1.4.7.1स्वयं जांच अभ्यास

1. मानकीकरण से क्या तात्पर्य है।

.....

.....

.....

1.4.8 सारांश :–

यह सत्य है कि मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। समाज में एक वर्ग मानक होता है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना, लिखना, उसी का खाना–पीना, उसी के रीति–रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

इस पाठ में मानकीकरण से अभिप्राय, मानकीकरण के अभिलक्षण, उपादान तथा हिन्दी भाषा के मानकीकरण के विविध स्तरों पर विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही मानकीकरण ही सम्पूर्ण प्रक्रिया (चयन, प्रसार, प्रयोग, स्वीकृति) का विवेचन किया गया है।

1.4.9 प्रश्नावली :–

1. मानकीकरण से आपका क्या अभिप्राय है ?
2. मानकीकरण के अन्तर्गत समरूपता की क्यां संकल्पना है ?
3. अनुकूलित सर्वग्राहयता किसको कहते हैं ?
4. हिन्दी भाषा के मानकीकरण के उच्चारण स्तर की उदाहरण साहित विवेचना करें ?
5. हिन्दी की मानक वर्ण माला का ध्यान से पाठ करें ?
6. मानकीकरण की प्रक्रिया के विविध सोपानों की चर्चा करें ?

1.4.10 सहायक पुस्तकें :–

1. हिन्दी व्याकरण – कामता प्रसाद गुरू
2. हिन्दी भाषा – भोलानाथ तिवारी

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.